wishoutionus

७६८

❀ श्री हरिः ❀ १०८

यतो धर्म्मः ततो जयः ।

कल्याण का मार्ग

(भक्ति प्रकाश)

[प्रेमी तथा श्रद्धालुओं के हितार्थ]

लेखक तथा प्रकाशक—

श्रीमान् परिव्राजकाचार्य्य परमहंस श्री १०८

स्वामी ज्ञानाश्रम जी महाराज

स्थान—वरुआ पो०—घनश्यामपुर जि०—कानपुर ।

बी. बी. एण्ड सी. आई. रेलवे स्टेशन—चौबेपुर ।

प्रबन्धक—

पण्डित शिवनारायण पाण्डेय,

स० अ० म्यू० स्कूल मन्नीराम बगिया—कानपुर ।

वं

पण्डित चन्दीप्रसाद द्विवेदी,

म्यू० सेण्ट्रल ट्रेनिङ्ग स्कूल कानपुर ।

कार्तिक सं० १९९४ वि० नवम्बर सन् १९३७ ई०

प्रथमवार १०००] ❀ [मूल्य केवल प्रेम

श्री स्वामी ज्ञानाश्रम जी महाराज का
संक्षिप्त परिचय

आपका जीवन
चरित्र सराहनीय है
विशेष परिचय तो डाक्टर
दुर्गाशंकर जी सम्पादक
कल्पबृक्ष ने लिखा है परन्तु मैं
निजी अनुभव लिखता हूं कि आप
प्रत्येक साधक को उसकी रुचि के अनुसार
थोड़े साधन से प्रारम्भ कराते हैं और
उच्चकोटि की पराकाष्टा अर्थात् अहर्निशि ब्रह्म
विचारतक शास्त्रानुसार पहुँचाना आपकी
हस्त लाघवता है, आपके यहाँ
पर्ण की कुटियों में दो चार
विद्यार्थी व साधु साधन अवस्था
के लिये बने ही रहते हैं
और स्वामी जी निष्काम
उनकी यथा योग्य
सेवा करते हैं।

शिवनारायण पाण्डेय,
स० अध्यापक म्यू० स्कूल बगिया—कानपुर।

❀ श्रीः ❀

प्रस्तावना

—०○०—

आज कल पश्चिमीय राज्य और पश्चिमीय शिक्षा के कारण मनुष्यों को वैदिक प्राचीन मार्ग से अश्रद्धा सी होगई है तिस पर बहुत लोग अनपढ़ होने के कारण और सांसारिक चिन्ता के कारण अपने कल्याण मार्ग पर अग्रसर नहीं होते उनमें भी भाग्यवश जिनको सन्मार्ग प्राप्ति की इच्छा भी हुई तो साम्प्र-दायिक महन्तादिकों के फेर में पड़ के नाम मात्र परमार्थ दीक्षा ग्रहण करके केवल एक बार नाम श्रवण मात्र से अपने को कृतार्थ मान लेते हैं, कोई २ सीधे भोले भालों को पाखण्डी नाना वेश धारी अपने को बड़े सिद्ध जनाते हुये छल प्रपञ्च से लोगों का धन लेके नष्ट भ्रष्ट करके चले जाते हैं ऐसी दुर्दशा देख के सीधे सादे हितेच्छू जनों के हितार्थ यथार्थ मार्ग क्या है और कैसे आचरण करना, धूर्त ठगों से कैसे बचना, दीक्षा ग्रहण क्यों करना और उससे क्या लाभ होता है और उसकी क्या विधी है, शिष्य के लक्षण, गुरू के लक्षण, दीक्षा ग्रहण विधि आदि अनेक विषयों को समयानुकूल अति सरलता से सविस्तर यथामति वर्णन किया गया है और स्थल स्थल पर उपयोगी स्थानों पर शास्त्रीय प्रमाण भी दिये गये हैं उन सब को जान के पाठक गण स्वयं विचार के अपने कल्याण मार्ग को अवलम्बन कर सकते हैं

प्रथमोध्याय में गुरु शिष्य संवादरूप से प्रथम मोक्ष प्राप्ति उपाय वेदोक्त रीत्या सप्रमाण ज्ञान ही है ततः ज्ञान प्राप्ति का उपाय भगवद्भक्ति है उसके अधिकारी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यासी ये सब अधिकारी हैं। उस भक्ति के साधन दो हैं वैराग्य और विश्वास तत्पश्चात् प्रश्न होता है कि ब्राह्मण को भी दूसरा गुरू करना चाहिये इसका सप्रमाण और सयुक्तिक उत्तर फिर दीक्षा लेने में शास्त्रीय तथा वेद के प्रमाण देके सिद्ध किया गया है और दीक्षा बिना जप दान तप किया हुआ निष्फल होता है इस विषय का भी सप्रमाण वर्णन किया गया हैं तत्पश्चात् तर्क और युक्तियों से भी दीक्षा लेना आवश्यक है ये सिद्ध किया गया है।

ततः सद्गुरु के अभाव में किसी विद्वान या अच्छे प्रतिष्ठित महात्मा से उपदेश लेना चाहिये या नहीं इस विषय को भी सविस्तर वर्णन किया है पश्चात् सद्गुरु के लक्षण, निषिद्ध गुरु के लक्षण फिर सच्छिष्य लक्षण, दुष्ट शिष्य के लक्षण वर्णित हैं तत्पश्चात स्त्रियों को मन्त्र ग्रहण का अधिकार है या नहीं ये विषय भी सविस्तर सप्रमाण वर्णित हैं फिर साधक को सद्गुरु की प्राप्ति न हो तो उसका उपाय वर्णन कर दीक्षा ग्रहण की विधि और समय (काल) का भी वर्णन किया गया है।

प्रथमोध्यायः

पञ्च तत्व और उसके देवता तथा साधक के शरीर में जिस

तत्व की अधिकता हो उसके अधिष्ठातृ देवता का ही मन्त्र उदेपश करना. अन्यथा लाभ न होगा।

मन्त्र उपदेश में सिद्ध साध्यादि विचार और शास्त्रोक्त सद्गुरु के लक्षण जिसमें न हों उससे उपदेश न लेने में सप्रमाण दोष वर्णन फिर गुरु का महात्म्य वर्णन।

द्वितीयोऽध्यायः

मन्त्र जप विधि वर्णन, ऋषिछन्ददेवता न्यास ध्यानादि की आवश्यकता, जप किस समय करना चाहिये, पुरश्चरण विधी और संकल्प तथा अन्त का संकल्प, हवन की विधि, शाकल्य का प्रमाण समयानुकूल वर्णन किया गया है पुरश्चरण करते समय पालनीय नियमों का वर्णन पुरश्चरण में गृहस्थ का ब्रह्मचर्य, और विरक्त का ब्रह्मचर्य और उसके नियम वर्णन तथा उसका उपाय भी सरल रीति से वर्णित है जप कितने प्रकार का होता है उसके लक्षण ।

तृतीयोऽध्यायः

शिष्य का सदाचार वर्णन गुरु का मुख्य कर्त्तव्य वर्णन।

चतुर्थोऽध्यायः

चित्त स्थिर न होने के चार कारण और उनका उपाय तथा ध्यान के समय मन्त्र का जप करना उसका सयुक्ति वणन।

पञ्चमोऽध्यायः

चित्त स्थिर न होने का कारण तथा उसके स्थिर होने का सरल उपाय

चित्त स्थिर न होनें के चार मुख्य कारण हैं।

१—संसार में आसक्ति ।

२—मस्तिष्क की निर्बलता ।

३—सत शिक्षा का अभाव ।

४—व्यर्थ भाषण तथा मिथ्या भाषण ।

उपाय

इसके साधक को वाणी के संयम का अभ्यास करना चाहिये ।

सत शिक्षा के लिये विद्वान महात्माओं के सतसङ्ग तथा उत्तम उत्तम धार्मिक महत्माओं के रचे हुये ग्रन्थों को धीरे धीरे वारम्वार विचारना ।

मस्तिष्क की निर्बलता के लिये पौष्टिक वस्तुओं का सेवन ।

वैराग्य-विषय

मन एक ही कार्य कर सकता है इसका वर्णन इसमें ऊधो व गोपियों का दृष्टान्त ।

गीता तथा महात्मा पातञ्जलि के प्रमाण सविस्तार वर्णन हैं ।

मन्त्र जप के साथ २ एकाग्रता पूर्वक ध्यान का नियम ।

इष्ट देव व गुरु के चित्र में ध्यान जमाने का विस्तार पूर्वक वर्णन ।

मन व प्राण का घनिष्ट सम्बन्ध होने से जप व ध्यान का साथ २ होना विस्तार पूर्वक वर्णन है ।

प्राण की स्थिरता के लिये आसन प्राणायाम के होने की आवश्यकता आदि का वर्णन ।

षष्टमोऽध्यायः

भगवदाराधन करते हुये हमारा चित्त उन्नत अवस्था को प्राप्त हो रहा है या अवनत अवस्था को प्राप्त हो रहा है इसकी परीक्षा तीन प्रकार से होती है। प्रथम परीक्षा ध्यान के समय, द्वितीय परीक्षा स्वप्न के द्वारा, तृतीय परीक्षा पदार्थों में वितृष्णता नाम तृष्ण रहित होना और इन तीनों परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने का उपाय। प्रथम ध्यान की परीक्षा में उत्तीर्ण होने का उपाय, द्वितीय स्वप्न परीक्षा में सफलता प्राप्ति का उपाय, तृतीय बाह्य विषयों से तृष्णा रहित होने का उपाय वर्णित है।

सप्तमोऽध्यायः

किसी सद्भाव को सदैव मन में बनाये रखने का उपाय जिसमें सात अवसर हैं।

प्रथम अवसर निद्रा खुलते ही भगवत्स्मरण कर तीव्र इच्छा से एकाग्रता पूर्वक ईश्वर से प्रार्थना करना। द्वितीय अवसर ध्यान का है जब अच्छी तरह ध्यान जम जाय उस समय तीव्र इच्छा से ईश्वर से एकाग्रचित्त से प्रार्थना करे। तृतीय अवसर भोजन पाते समय का है भोजन पाते समय एकाग्र शान्ति चित्त होके मौन धारण कर जिस भाव को मन में धारण करेगा वही स्थिर हो जायगा। चतुर्थ अवसर निद्रा आने के पूर्व का है उस समय जो सद्भाव मन में धारण किया जायगा वह स्थिर रहेगा पूर्वोक्त चार अवसरों के अतिरिक्त तीन अवसर तीन सन्धी

हैं अर्थात् प्रातः काल, मध्यान्हकाल सायंकाल, इन तीनों सन्धियों में भी एकाग्रचित्त से जो सद्भाव मन में रक्खा जायगा वह अवश्य स्थिर रहेगा ।

अष्टमोध्यायः

व्यवहार परमार्थ सिद्धी का अनुभूत उपाय द्विजाती अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनो के लिये गायत्री, जप, अग्निहोत्र सहित श्रद्धा विश्वास पूर्वक करना और दूसरा प्रार्थना सप्रमाण वैदिक और व्योहारिक रीति से वर्णन है ।

नवमोध्यायः

चारो वर्णों को कलिकाल में संसार से तरने का सरल उपाय नाम स्मरण और उसका वर्णन । नाम स्मरण कैसे करना चाहिये मन में नाम स्मरण करनेसे पांच प्रकारके लाभों का वर्णन । भगवान के नाम अनन्त हैं उनमें से कौन सा नाम लेना चाहिये । तिसपर हरि नाम का महात्म्य और प्रमाण का वर्णन ।

नाम स्मरण ही से सब पापों की निवृत्ती होती है तो वर्णाश्रम धर्म सम्पादन करना या नहीं, इसको प्रमाण और नाना युक्तियों से सिद्ध किया गया है । अन्त में क्षमा प्रार्थना है ।

दशमोध्यायः

नाम स्मरण में सफलता न होने का कारण और दश दोषों का सप्रमाण वर्णन ।

एकादशोध्यायः

नाम स्मरण से सर्व पाप क्षय होता है तब वर्णाश्रम धर्म संपादन क्यों करना इसमें क्या विशेषता है इसका युक्ती और प्रमाण-युक्त वर्णन।

द्वादशोध्यायः

सदाचार वर्णन और सयुक्तिक सप्रमाण वर्णन तथा उसकी विधि वर्णन।

त्र्योदशोध्यायः

मानसिक विकारों की निवृत्ती का सरल उपाय स्वयं संकेत और पर संकेत।

स्वयं संकेत से अपने मानसिक विकारों की अर्थात् क्रोधादिकों का दमन तथा शारीरिक रोग निवृत्ती का वर्णन है।

स्वयं संकेत तथा पर संकेत देने के नियम व्यसन निवृत्ति का संकेत, क्रोध संकेत निवृत्ति पर। संकेत का फल क्यों होता है इसका विवरण उस पर तीन दृष्टान्तों का वर्णन छोटे बालक वा अन्य मनुष्यों को संकेत देने की रीति, भयभीति बालक को संकेत देने की रीति, मंद बुद्धिवा चंचल चित्त पर संकेत देने की रीति।

यदि कोई बालक या मनुष्य जिसके पास हम न पहुँच सकें तो उसको गुप्त रीति से संकेत देने की विधि, गुप्त रीति से अवगुण छुड़ाने की विधी वर्णन की गई है।

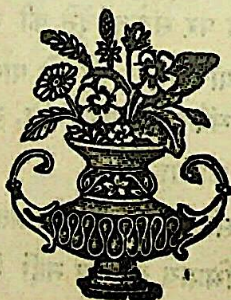
इस पुस्तक में किसी प्रकार से पक्षपात वा किसी मतवादी पर आक्षेप करने के अभिप्राय से लेख नहीं लिखा है। किन्तु सीधे

साधे भोले भाले हितेच्छू जनों के अर्थ प्राचीन सनातन मार्ग प्रदर्शन के लिये लिखा गया है यदि कहीं भूल से कुछ त्रुटी रह गई हो तो महात्मा सज्जनों से क्षमा प्रार्थी हूँ ।

इस ग्रन्थ की छपाई में जिन सज्जनों ने निष्काम भाव से आर्थिक सहायता की है उनमें संक्षेपतः कुछ नाम दिये जाते हैं ।

पं० शारदादीन इञ्जीनियर बाजपेई सीतापुर, पं० रामऔतार मिश्र ठेकेदार सीतापुर, पं० जनार्दन दुबे बड़ागाँव जि० हरदोई, ठाकुर गजराजसिंह अभूतपूर्व बड़ागाँव जि० हरदोई आदि आदि अनेक सज्जनों ने धार्मिक भार से आर्थिक सहायता दी है ।

तथा इस ग्रन्थ के लेखनकार्य संशोधनकार्य अन्य छपाई विषयक प्रबन्ध पं० शिवनारायण पांडे मास्टर म्यु० स्कू० कानपुर तथा पं० बन्दीप्रसाद दुबे मास्टर म्यु० सेन्ट्रल स्कूल कानपुर बड़ी श्रद्धा भक्ति के साथ परिश्रम किया है उनको तथा उपरोक्त सज्जनों को इस कार्य से श्री कृष्ण ईश्वर सदा उत्तरोत्तर शुभ बुद्धि बृद्धि करें यही मेरी हार्दिक प्रार्थना है ।



पृष्ठ	पंक्ती	अशुद्ध	शुद्ध
क	१८	उठाय	उपाय
घ	५	तृष्ण रहित	तृष्णा रहित
ङ	८	व्योहारिक	व्यावहारिक
घ	१८	क्रोध संकेत निवृत्ति पर	क्रोध निवृतिपर संके
घ	१४	भयभीति	भयभीत
१	८	विरचि	विरिंचि
१	१०	पुच्छ	पिच्छ
१	१३	सुरदुमा पहारकं	सुरद्रुमा पहारकं
२	१	मृणारि	मृगारि
२	६	जयञ्जनो	जपञ्जनों
२	७	मव भयम पहेतुं	भव भयम पहंतुं
२	८	जन्हे	जह्
२	९	वर्णान	वर्गान्
३	१९	यच्छ्रय	यच्छ्रेय
४	१६	ज्ञान प्राप्ति	ज्ञान प्राप्त
६	२	मरणांतर	मरणांनंतर
६	५	ज़ंम	जंम शब्द अधिक है
६	१५	कुर्वति	कुर्वंति
१०	८	यानिष्युर्वथा	यानिस्युर्वथा
१०	१८	प्रवर्तिभंयन्मार्गे	प्रअवत्तिभंगवन्मार्गें
१०	१६	दात्ता	दीक्षा
११	२	प्राप्तार्थं	प्राप्तयर्थं
११	३	भगवान्मार्ग	भगवन्मार्ग में

पृष्ठ	पंक्ती	अशुद्ध	शुद्ध
११	७	सिध्ये सध्यत्कोटि	सिध्ये सिध्यत्कोटि
११	८	मज्जनीह	मज्जतीह
११	१०	सत्यक्तः	संत्यक्तः
११	११	गुरुमुखश्रवण	गुरुमुख से श्रवण
११	१८	सामन्य	सामान्य
१६	७	दयालुधर्म तत्परः	दयालुधर्म तत्परः
२०	१५	कार्योनकर्हिचित्त	कार्योनकर्हिचित्त्
२५	६	लुब्ध चेतसां	लुब्ध चेतसं
२५	७	विद्वाचैवानु	विद्वान्नेवानु
२६	८	सभर्त्रा चट भुज्ञया	सभर्त्रा तदनुज्ञया
२७	११	प्रप्ति	प्राप्ति
२८	६	इश्वर	ईश्वर
२८	१७	दाक्षी	दीक्षा
३१	४	सद्गुरू से	सद्गुरू ने
३२	१२	साधकं भक्तये अरिः	साधकं भक्तये दरिः
३४	१४	स्वाश्रम हीनता	स्वाश्रम हीनतः
३६	१४	मश्म सारं स्पर्शन्त्वं तथापि श्रित चरण युगे	मश्म सारंनस्पर्शन्त्विं तथापि श्रिक्त चरण युगे
४३	६	परमेश्वरः प्रीयता	परमेश्वरः प्रीयताम्
४८	१५	वित्तशाद्वंन	वित्तशाठ्यंन
४८	१६	वित्त शाम्य	वित्तशाठ्यन
५२	६	वधृत	वैधृति
७८	१३	संस्थंमनःत्वानकिंचिदपि	संस्थंमनःकृत्वानकिंचिदपि
८०	१७	परमात्नामे	परमात्मा में

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८२	१६	संसार का मान ही न रहे	संसार का भान ही न रहे
८३	२	मैत्री,करुण,मुदित्त,उपेक्षा	मैत्री,करुणा,मुदिता,उपेक्षा
८३	५	मैत्री करुण मुदितो	मैत्री, करुणा, मुदितो पेक्षाणां
८६	७	को कल्याणार्थ	के कल्याणार्थ
९०	७	प्रवेश करने का	प्रवेश करने को
९१	११	श्रवण कीर्त्तन करसा	श्रवण कीर्त्तन करना
९८	६	समाहित और अकाग्रचित्त	समाहित और एकाग्रचित्त
९८	६	पूर्ण स्वभाव वश	पूर्व स्वभाववश
९९	१२	सब से अनुभव	सब के अनुभव
१२२	७	आरै सर्व	और सर्व
१२२	१६	त्यक्तर द्वंय	त्यक्तर द्वंय
१२३	५	नारायणाँ	नराणां
१२३	७	विषयाध	विषयांध
१२३	१२	अछिलपि	अविच्छिन्नीय
१२३	१३	हरि नामनि दुष्ट चित्तों	हरि नाम दुष्ट चित्तों
१२४	११	कीर्त्तना च्छ्रवणाच्छिवे	कीर्त्तना च्छ्रवणा च्छिवे
१२५	१४	रहस्य मत्त	रहस्य मय
१२६	१३	यदि देह द्रव्य	यदि द्रव्य
१२७	६	नाम महात्य	नाम माहात्म्य
१२९	३	विनिघ्नन्तिनणांकत्यंप्राक्त तंह्यानपंतिहि।	विनिघ्नन्ति नृणांकृत्यंप्राक्तं ह्यानयंतिहि
१३०	१	नाम महात्म्यँ	नाम महात्म्यं
१३३	४	विष्णुश्च हृदये	विष्णोश्च हृदये
१३४	१७	शास दमादि	शम दमादि

पृष्ठ	पंक्ती	अशुद्ध	शुद्ध
१३६	२	आर चिट्ठी	ओर
१३७	१	हरि नाम्नि कल्पते	हरि नाम्निकल्पते
१३७	११	नाम्ने बलाद्यस्य	नाम्नो बलाद्यस्य
१४४	७	महात्म्म	माहात्म्य
१४४	६	यद्यपि वर्णाश्रम	वर्णाश्रम यद्यपि शब्द अधिक है न होना चाहिये
१४६	१२	जिन्हें उपेक्षा	जिन्हें अपेक्षा
१४७	७	प्रवृत्त	प्रवृत्ति
१४८	६	तस्माछास्त्र	तस्माच्छास्त्र
१५१	११	अनभ्यासेन	अनभ्यासेन
१५१	१२	आलास्यातन्न दोषाश्च	अलस्यादन्न दोषाश्च
१५२	१५	प्राया:	प्राय:
१५७	१२	मनुवर्त शिष्य	मनुवर्तयिष्यु
१०६	१५	घातश्च तपश्च	घातश्च तपश्च
१६४	१६	शक्रम शिवतौ	शक्रमशिवनौ
१६५	१	भुक्तापाणि	भुक्त्का पाणि
१६६	१	साधारत:	साधारणत:
१६६	:	मादिवा स्वाप्ती:	मादिवा स्वाप्सी:
१७८	१६	यश्च विप्रो	यश्चविप्रो
१८१	१३	गर्भादष्टमेवर्णे	गर्भादष्टमेवर्षे
१८८	११	कर्मानुसारस्भाव	कर्मानुसार स्वभाव
२००	१	और द्वतीय	और द्वितीय
२०५	६	क्रोध रहति	क्रोधरहित
२०६	१५	मनपरि पूर्ण	मनपर पूर्ण
२०८	२	आक्रिरय कवाचन	आक्रियस्य कदाचन

कल्याण का मार्ग।

प्रथम अध्याय।

श्रीकृष्णाष्टकम्।

चतुर्मुखादि संस्तुतं समस्त सात्त्वतानुतम्।
हलायुधादि संयुतं नमामि राधिकाधिपम्॥ १
बकादि दैत्य कालकं स गोपगो विपालकम्।
मनोहराऽसितालकं नमामि राधिकाधिपम्॥ २
सुरेन्द्र गर्व गंजनं विरंचि मोह भंजनं।
व्रजांगनां नुरंजनं नमामि राधिकाधिपम्॥ ३
मयूर पुच्छ मंडनं गजेंद्र दंत खंडनम्।
नृशंस कंस दंडनं नमामि राधिकाधिपम्॥ ४
प्रदत्त विप्रदारकं सुदाम धाम कारकम्।
सुरन्द्रुमापहारकं नमामि राधिकाधिपम्॥ ५
धनंजया जयावहं महा चमू क्षया वहम्।
पितामहव्यथापहं नमामि राधिकाधिपम्॥ ६
मुनीन्द्र शाप कारणं यदु प्रजापहारणं।
धराभारवतारणं नमामि राधिकाधिपम्॥ ७

सुबृक्ष मूल शायिनं मृणारि मोक्ष दायिनं ।
स्वकीय धाम यायिन नमामि राधिकाधिपम् ।। ८

इति श्री परमहंस योगिवर्य स्वामि ब्रह्मानन्द विरचितं
श्री कृष्णाष्टकं सम्पूर्णम् ।

इदं समाहितो हितं वराष्टकं सदामुदा ।
जयञ्जनो जनुर्जरा, भवार्तितः प्रमुच्यते ।।
भव भयम प हेतुं ज्ञान विज्ञान सारम् ।
निगम कृदुप जन्हे भृंगवद्वेद सारम् ।।
अमृत मुदधितश्चाप्यायन्भृत्य वर्णन ।
पुरुष ऋषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोस्मि ।।

अर्थ—संसार के जन्म मरण रूप भय के नाश करने के अर्थ ज्ञान और विज्ञान नाम अनुभव का सार चारों वेद रूप समुद्र का मंथन कर अमृत रूप गीता–शास्त्र रूप सार निकाल के भगवद्भक्तों को पान कराने वाले ऐसे पुरुषों में श्रेष्ट आदि पुरुष श्रीकृष्ण को बारम्बार नमस्कार करता हूँ ।

संसार के जन्म मरण रूप ताप से संतप्त मुमुक्षु श्री सद्गुरु के चरण कमलों को नमस्कार करके अपने कल्याण

की इच्छा से समित्पाणि अर्थात् कुछ भेंट धरके शिष्य प्रश्न करता भया क्योंकि—

"रिक्तहस्तस्तु नोपेयाद्राजानं देवतां गुरुम्"

अर्थ—राजा, देवता, गुरु के पास खाली हाथ नहीं जाना इससे हाथ में समिधें लेके गुरु के समीप जाने की वेद की आज्ञा है।

मोक्ष प्राप्ति का उपाय।

प्रश्न—हे भगवन् संसार बंधन से मोक्ष किस उपाय से होता है सो कृपा करके शास्त्र सम्मत जो उपाय हो सो कहिये मैं आपकी शरण हूँ। क्योंकि अर्जुन ने भी श्रीकृष्ण से कहा है।

"यच्छ्रेयस्यान्निश्चितं ब्रूहितन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधिमांत्वांप्रपन्नम्"

अर्थ—हे प्रभो जिसमें मेरा कल्याण हो वह उपाय आप मुझसे कहिये मैं आपकी शरण हूँ आपका शिष्य हूँ।

उत्तर—हे साधो संसार से मुक्त होने का उपाय आत्म ज्ञान है, वेदों में वर्णन किया है।

ऋतेज्ञानान्नमुक्ति" ज्ञाना देवतुकै वल्यं। तमेवविदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पंथा। विद्यते ऽयनाय।

इन तीनों श्रुतियों का तात्पर्य (अर्थ) एक ही है कि ज्ञान से मोक्ष प्राप्ति होती है तथा भगवान ने गीता में कहा है।

तद्विद्धिप्रणिपातेन परि प्रश्नेन सेवया उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्व दर्शिनः।

अर्थ—तत्वदर्शी ज्ञानी पुरुषों को नमस्कार कर सेवा कर के नम्र भाव से प्रश्न करोगे तो वे तुम्हें ज्ञान का उपदेश करेंगे।

ज्ञान प्राप्ति के उपाय

प्रश्न—हे भगवन् ज्ञान प्राप्ति का क्या उपाय है।

उत्तर—निष्काम भाव से वेद शास्त्रोक्त वर्णाश्रम धर्मों का सेवन करने से अन्तःकरण के मल की निवृत्ति होती है औरउपासना, अथवाअष्टाङ्ग, योग, लय, योग, साधना करने से निर्मल अन्तःकरण एकाग्र होने पर ज्ञान प्राप्ति होता है। तत्पश्चात् राज योग की सहायता से पूर्ण ज्ञान की उपलब्धि होती है।

जिसे वेदान्त शास्त्र में निदिध्यासन कहते हैं। दूसरा उपाय जो पूर्व कहि आए हैं वह उपासना भगवद्भक्ति है- यह अत्यन्त सरल उपाय है जिसका वर्णन आगे अन्य अध्यायों में सविस्तार किया जायगा।

(भगवद्भक्ति और उसका उपाय)

प्रश्न-हे प्रभो उपासना नाम भगवद्भक्ति का उपाय और उसकी विधि तथा उसके अधिकारी के लक्षण कृपा करके वर्णन करिये।

उत्तर-भगवद्भक्ति के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्ण अधिकारी हैं परन्तु उसके मुख्य दो साधन हैं।

१-संसार से वैराग्य, २-वेद शास्त्र, गुरु वाक्य में दृढ़ विश्वास क्योंकि यावत् संसार में विषयों से विराग न होगा, तावत् ईश्वर में प्रेम न होगा। दूसरा साधन वेद शास्त्र और गुरु वाक्य में विश्वास क्योंकि वेद शास्त्र में विश्वास न होगा तो उनमें कहे हुये वाक्यों में अविश्वास से साधन में रुचि ही न होगी। वैसे ही यावत् सद्गुरु वाक्य में दृढ़ विश्वास न होगा तावत् उनके बताये हुये साधनों में अविश्वास के कारण प्रवृत्ती ही न होगी इससे वेद शास्त्र और सद्गुरु वाक्य में पूर्ण विश्वास होना चाहिये।

(ब्राह्मण को भी गुरू करने की आवश्यकता)

प्रश्न—हे भगवन् क्या ब्राह्मण को भी दीक्षा गुरू दूसरा करना चाहिये।

उत्तर—अवश्यमेव ब्राह्मण को भी सद्गुरु से दीक्षा लेनी चाहिये—क्योंकि जैसे काशी जाना है तो किसी काशी मार्ग के ज्ञाता से मार्ग जानने की आवश्यकता होगी तथा विद्याभ्यास के लिये भी किसी विद्वान गुरु की शरण लेनी पड़ेगी। और संस्कृत पढ़े हुये को अन्य शास्त्र पढ़ने के लिये उस शास्त्रोक्त की शरण लेनी पड़ेगी—तैसे ब्राह्मण को तो गायत्री उपदेश से ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है क्योंकि यावत् गायत्री उपदेश न हो तावत् त्रिवर्ण का बना हुआ अन्न खाने पर भी कोई दोष नहीं माना जाता परन्तु गायत्री उपदेश होने पर अन्य जातीय ब्राह्मण का बना हुआ अन्न खाने से प्रायश्चितका भागी माना जाता है।

इससे सिद्ध हुआ ब्राह्मणत्व प्राप्तिके लिये गायत्री उपदेश है—इससे ब्राह्मण को भी अपने उपास्य देवता की मंत्र दीक्षा अवश्य ग्रहण करनी चाहिये कारण इसका यह है कि पंचतत्त्वों से शरीर उत्पन्न हुआ है उन पाँच तत्वों के ५ देवता हैं— इससे जिसके शरीर में जिस तत्व की प्रधानता है उसके अनुसार उसकी प्रकृति भी होना संभव है।

इससे उसी तत्व के देवता का मंत्र ग्रहण करने से उसको लाभ होना शास्त्र सम्मत है। इसका विशेष विवरण आगे किसी अध्याय में सविस्तार वर्णन किया जायगा।

दीक्षा में वेदादि प्रमाण।

प्रश्न–दीक्षा लेने में क्या शास्त्रीय प्रमाण भी हैं।

उत्तर–वेद, स्मृति, पुराण, तंत्र शास्त्र में बहुत प्रमाण मिलते हैं। अथर्ववेद के मुण्डकोपनिषद में कहा है–

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवा भिगच्छेत्
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्म निष्ठं।
शंकर भाष्य गुरुमेवाचार्यं शमदमादि–
सपन्नमभि गच्छेत् शास्त्रज्ञोपि स्वातन्त्र्येण-
ब्रह्म ज्ञानान्वेषणं न कुर्यात।

अर्थ–शम दमादि संपन्न गुरु की शरण में जाय, शास्त्रज्ञ होने से स्वतंत्रता पूर्वक ब्रह्म ज्ञान का विचार न करे।

श्वेताश्वतरो उपनिषद में भी कहा है—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौतस्यै।
ते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशते महात्मनः॥

अर्थ–जिसकी इष्ट देव में पराभक्ति है तैसे ही अपने

इष्ट देववत् गुरु में भी पूर्ण भक्ति है उसी को कहे हुये वेदों के रहस्य प्रकाशित होते हैं।

तथा भगवान ने गीता में भी कहा है।

तद्विद्धि प्रणि पातेन परि प्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यतिते ज्ञानं ज्ञानिस्तत्व दर्शिनः॥

अर्थ—वह ज्ञान ज्ञानियों के शरण जाके नमस्कार और सेवा करने से तत्वदर्शी ज्ञानी तुमको उपदेश करेंगे।

॥ श्रीमद्भागवत् में कहा है ॥

तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमं।
शाब्देपरेच निष्णातं ब्रह्मण्युप समाश्रयं॥

अर्थ—तिससे उत्तम श्रेय की इच्छा से जिज्ञासु वेद शास्त्र निष्णातनाम् ज्ञाता तथा ज्ञान और उपासना के रहस्य जानने वाले गुरू की शरण जाय।

वृद्ध गौतमीये

दीक्षा हि जगस्त्राणं दीक्षाहि परमं तपः
अदीक्षितस्य मरणे प्रेतत्वं नैव मुच्यते॥
अतः सर्व प्रयत्नेन मंत्र दीक्षाचरेद्बुधः
दीक्षितस्याशु सिध्यंति सर्वेर्था मंत्र तंत्र जाः॥

अर्थ—दीक्षा ही संसार से रक्षा करने वाली है और दीक्षा ही परम तप है, इससे दीक्षा रहित के मरणान्तर प्रेतत्व नाम बारम्बार जन्ममरण नहीं छूटता।

इससे सर्व प्रयत्न से मन्त्र दीक्षा ग्रहण करे क्योंकि दीक्षित को ही मंत्र तंत्र जन्म सिद्धी प्राप्त होती है।

यही बात महादेव जी ने पार्वती से कही है—

अदीक्षितस्य बामोरू कृतं सर्वं मनर्थकम्।
पशु योनिमवाप्नोति दीक्षाहीनो मृतो नरः॥
बिनासच्छास्त्र जां दीक्षां प्रसादं श्रीगुरोर्बिना।
बिना बर्णाश्रमा ध्वानं कथं तत्त्वज्ञता भवेत्॥

अर्थ—हे पार्वती दीक्षा रहित मनुष्य का सर्व कर्म अनधिकारी होता है इससे दीक्षा हीन मरण के पश्चात् पशु योनि को प्राप्त होता है।

अन्यत्र

अदीक्षाये कुर्वंति जप पूजादिकाः क्रियाः।
न फलंति ध्रुवं तेषां शिलायामुप्त बीजवत्॥
इह दीक्षा बिहीनस्य न सिद्धि र्न च सद्गतिः।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन गुरुणा दीक्षितो भवेत्॥

अर्थ–दीक्षा हीन मनुष्य जप पूजादि जो सत्कर्म करते हैं वह फलदायी नहीं होता जैसे शिला पर बोया हुआ बीज निष्फल होता है।

तिससे सर्व यत्न करके सद्गुरु से दीक्षा ग्रहण करे क्योंकि दीक्षा हीन को न सिद्धि ही होती है और न सद्गति ही होती है।

तपस्तप्तं देवतादि जपनं दानमेव च
कृतान्यपि चयानिष्युर्वृथा दीक्षां बिनामुने ॥१

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा बानप्रस्थोयतिस्तथा
दीक्षाहीना न मुच्यंते इत्याह भगवान्छिव: ॥२

अतोधिकार संप्राप्त्यै देवाग्नि गुरु पूजने
अवश्यमेव संग्राह्या मंत्र दीक्षा मुमुक्षुणा ॥३

प्रवर्त्ति भगवन्मार्गो न जायेतु गुरुं बिना
तस्माद्गुरुपदां भोजं संश्रयेन्मुक्ति सिद्धये ॥४

अर्थ–जप तप दान किया हुआ दीक्षा बिना सब व्यर्थ होता है।

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, बानप्रस्थ, सन्यास कोई आश्रम वाला हो दीक्षा बिना मोक्ष को नहीं प्राप्त होते ऐसे भगवान शिव जी कहत हैं॥२॥

इससे देवता अग्नि आदिपूजन के अधिकार प्राप्तार्थ मुमुक्षू ने मंत्र दीक्षा अवश्य ग्रहण करनी चाहिये। गुरु किये बिना भगवान्मार्ग में यथार्थ प्रवृत्ति और अनुभव नहीं होता तिससे मोक्ष सिद्धी के अर्थ श्री सद्गुरु चरण कमलों का आश्रय अवश्य लेना चाहिये ॥३॥

यो ना धीते गुरोर्वक्त्रान्नसिध्यत्कोटि जन्मभिः।
बुध्या वेदार्थ बोद्धापि मज्जनीह भवाम्बुधौ॥
गुरुपदेश रहितः स्वीय प्रज्ञा स मन्वितः।
धृतश्च पुच्छ सत्यक्तः गो पुच्छ इव मज्जति॥

अर्थ–जो गुरु मुख श्रवण किये बिना अपनी बुद्धी से वा किसी से सुन के शास्त्र के अर्थ करता है वा मंत्र जपता है वह कोटि जन्मों में भी सिद्धी को नहीं प्राप्त होता, वह वेदार्थ का जानने वाला हो तो भी भवसागर में गोते ही खाता है।

जो केवल अपनी बुद्धी से ही शास्त्र के रहस्य को वा शास्त्र में देख के वा सामन्य रीति किसी से सुन के बिना गुरु दीक्षा के मंत्र जपता है वह नदी में तैरने के लिये गो

पुच्छ पकड़ के बींच में ही छोड़ देता है, तैसे ही विना दीक्षा वाला भी संसार नदी में डूबता है।

* गुरु गीता में कहा है *

या बदस्तीह संबंधो ब्रह्माडस्ये श्वरेणवै ।
तथा क्रियाख्य योगस्य संबंधो गुरुणासह ॥
दीक्षा बिधावीश्वरोवैकारण स्थल मुच्यते ।
गुरुः कार्यस्थलं चातो गुरु ब्रह्म प्रगीयते ॥

अर्थ—जैसा ईश्वर के साथ ब्रह्माण्ड का सम्बन्ध है तैसा ही क्रिया योग के साथ गुरू का भी सम्बन्ध है। दीक्षा विधान में ईश्वर कारण स्थल है और गुरू कार्य स्थल होने से ब्रह्म रूप है।

गुरु मूलं जगत्सर्वं गुरु मूलं परं तपः
गुरोःप्रसाद मात्रेण मोक्षमाप्नोति सद्वशी ।

गुरूही सकल जगत् के मूल हैं और गुरू ही श्रेष्ठ तप के मूल हैं इससे जितेन्द्रिय साधक गुरूके प्रसाद मात्रसे ही मोक्ष लाभ कर सकता है।

शिव संहिता में शिवजी ने कहा है—
यथा यथा गुरौप्रीतिस्तथा सिद्धिर्भवेन्नृणाम् ।
गुरुं विहाय कुर्याच्चेच्छ्रमस्तस्या व शिष्यते ॥

अर्थ—जैसी जैसी गुरु चरणों में प्रीति बढ़ती है तैसी ही तैसी परमार्थ में सिद्धी होती है और जो गुरू के बिना कोई करता है तो उसे श्रम ही शेष हाथ लगता है ।

दीक्षा ग्रहण में युक्ति ।

प्रश्न—हे भगवन् दीक्षा ग्रहण में जो वेद शास्त्र के प्रमाण आपने दिये सो तो ठीक है परन्तु तर्क और युक्ति बिना आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त जनों को इससे संतोष नहीं हो सकता इससे युक्ती से भी सिद्ध करके समझाइये ।

उत्तर—जैसे व्यवहारिक कार्य सीखने के लिये व्यवहारिक गुरू की आवश्यकता होती है और चित्रकारी सीखने के लिये उत्तम चित्रकार की आवश्यकता होती है। दर्जी का काम

सीखने के लिये कुशल दर्जी की आवश्यकता है तैसे ही ईश्वर प्राप्ति का मार्ग जानने के लिये भी सद्गुरू की आवश्यकता होती है।

प्रश्न—हे भगवन् मेरा अपराध क्षमा हो मैं बारम्बार आपसे तर्क करता हूँ क्या करूँ यावत् भली प्रकार सन्देह निवृत्ति न हो तावत् उस कार्य में दृढ़ विश्वास नहीं होता।

उत्तर—अवश्यमेव ऐसा ही है इससे जो जो शंका हो उसकी पहिले निवृत्ति करके दृढ़ता पूर्वक कार्य मे प्रवर्त्त होना चाहिये।

सद्गुरू के अभाव में किसी ब्राह्मण या प्रतिष्ठित महात्मा से उपदेश लेने में क्या दोष है

प्रश्न—हे भगवन् सद्गुरु मिलना दुर्लभ है क्योंकि उनका पहिंचानना कठिन है इससे कोई विद्वान ब्राह्मण या कोई अच्छे प्रतिष्ठित महात्मा जिनको बहुत लोग मानते हों ऐसों से उपदेश लेने में क्या हानि है।

उत्तर—जैसे किसी व्यापारी को माल खरीदना हो तो अच्छे चतुर जानकार ईमानदार दलाल को साथ ले के माल खरीदता है तो माल अच्छा मिलता है और उससे लाभ भी होता है क्योंकि दलाल को सब मालूम रहता है कि कहां कौनसा माल अच्छा मिलता है कहां खराब मिलता है और यदि दलाल लालची या कपटी हो तो माल बेचने वाले से मिलके खरीदार को खराब माल दिला देता है उससे व्यापारी की हानि होती है इससे अच्छे जानकार ईमानदार सच्चे दलाल के मारफ़त माल खरीदने से माल अच्छा मिलता है और लाभ भी होता है तैसे सद्गुरू से दीक्षा प्राप्त होने से साधक संसार सागर से पार हो जाता है और लोभी, दुराचारी, कपटी, दंभी आदि गुरुओं से दीक्षा लेने पर जो गुण गुरू में होते हैं वही शिष्य में भी आजाते हैं। उससे

ईश्वर प्राप्ति के बदले नरक प्राप्ति ही होती है क्योंकि मनुष्य जैसा संग करताहै वैसाही होजाता है अफ़ीमी के संग से अफ़ीम, भँगेड़ी के संग से भाँग, जुवारी के संग से जुवा आदि व्यसन अवश्य लग जाते हैं। तैसेही पूर्वोक्त दुराचारादि गुण युक्त गुरू से दीक्षा लेने पर लाभ तो दूर रहा किन्तु हानि ही होती है— श्री महादेव जी ने गुरुगीता में पार्बती जी से कहा है कि—

गुरवो बहवः संति शिष्य वित्तापहारकाः।
दुर्लभो यं गुरुर्देवी शिष्य संताप हारकः॥

अर्थ—हे देवी शिष्य के द्रव्य को हरण करने वाले गुरू बहुत होते हैं परन्तु शिष्य के संताप हरण करने वाले गुरू दुर्लभ होते हैं।

महात्मा कबीर ने भी कहा है—

कनफुका गुरु हद का, बेहद का गुरु और।
बेहद का गुरुजब मिलै, तब लागै हरि ठौर॥
गुरुआ तो गलियाँ फिरें, घर २ कंठी देत।

इससे हर किसी को बाह्य आडम्बर देख के गुरू बनाना हितकर नहीं। आजकल गुरू बनने वालों की भरमार है, अनेकों लुच्चे, लफंगे, कामी, लोभी, साधू, ज्ञानी, महात्मा, योगी बने फिरते हैं। इन्हीं के कारण सच्चे साधुवों की भी अनजान लोगों में कदर नहीं रही। दूध का जला माठा भी फूँकके पीता है। यह कहावत चरितार्थ होरही है लोगों को ठगने वाले, बड़ी २ बातें बनाने वाले चालाकी से भोले भाले मनुष्यों को झूंठी सिद्धी का चमत्कार दिखा के अपने को सिद्ध बताने वालों की कमी नहीं है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि आज कल सच्चे पुरुष हैं ही नहीं हैं अवश्य हैं परन्तु उनकी प्राप्ती महत्पुण्य से होती है।

सद्गुरू और सच्छिष्य के लक्षण

प्रश्न—हे प्रभो सद्गुरू के लक्षण तथा शिष्य के लक्षण क्या हैं ?

उत्तर-सर्वशास्त्रपरो दक्षः सर्व शास्त्रार्थ कोविदः ।
सुवचाः सुंदरः स्वंगः कुलीनः शुभ दर्शनः ॥
जितेंद्रियः सत्यवादी ब्राह्मणः शांत मानसः ।
आश्रमी देशवासी च गुरुरे वं विधीयते ॥
गंभीरार्थं विजानीते बुधो निर्मल मानसः ।
सर्व कार्येषु निपुणो जीवन्मुक्त स्त्रितापहृत ॥
करोति जीव कल्याणं गुरुः श्रेष्ठः स उच्यते ॥

अर्थ—सर्व शास्त्र में पारंगत, चतुर, मधुर-भाषी, सर्वांगपूर्ण, सुन्दर, सत्कुलोत्पन्न, ब्राह्मण, शांत मानस, सत्यवादी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, बान-प्रस्थ, सन्यासी इन आश्रमों में किसी आश्रम में हों अनुष्ठानशील, भारतवर्ष निवासी ऐसे सर्व-गुण सम्पन्न महात्मा गुरू करने योग्य हैं और पञ्च तत्त्वों के अनुसार जो महा पुरुष, विष्णु, सूर्य्य, शक्ति, गणेश, शिवोपासना रूप पञ्च-सगुणोपासना के रहस्यों को समझते हों और मंत्र योग, हठ योग, लय योग, राज योग इन

चारों के अनुसार, चतुर्विध योग तथा निर्गुणो-
पासना को जानते हों ऐसे ज्ञानी, निर्मलमानस
त्रिताप रहित जीवों का कल्याण करने वाले
जीवन्मुक्त महात्मा श्रेष्ठ गुरु कहलाते हैं।

पद्म पुराण में भी कहा है—

शब्द ब्रह्म परब्रह्म निषण्ण तो ध्यान तत्परः।
शिष्ये पुत्रे तुल्य दृष्टिर्दयालु धर्म संश्रयः॥
वर्णाश्रम मतावलम्बी संध्योपासन तत्परः।
सुधीरः संशयच्छेत्ता काम क्रोध विवर्जितः॥
श्रद्धयोपाहृतं यत्तत्पत्र पुष्प फलादिकं।
गृण्हातियोमुदा शिष्यात्संतोषी गुरुरूच्यते॥
अमान्य मत्सरो दक्षोनिरालस्यो जितेन्द्रियः।
अद्वेष्टा पक्ष रहितः पर निन्दा बिवर्जितः॥

अर्थ—शब्द ब्रह्म (वेद शास्त्र) परब्रह्म
में निष्णात ध्यान परायण और शिष्य तथा
पुत्र में तुल्य दृष्टि, दयालु, धर्म परायण,
वर्णाश्रम धर्म को अवलम्बन करने वाले संध्यो-

पासन में तत्पर, धैर्यवान, संशयच्छेदन करने वाले काम क्रोध रहित तथा श्रद्धा से लाये हुये पत्र पुष्प फलादि का प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण करते हैं वे सन्तोषी गुरु कहलाते हैं।

मान रहित और मत्सर नाम द्वेष रहित सब कार्य में दक्ष, आलस्य रहित, जितेन्द्रिय, किसी से द्वेष न करने वाले, पक्षपात रहित पर निन्दा न करने वाले ऐसे सद्गुरु युक्त को गुरू करना चाहिये।

निषिद्ध गुरू लक्षण

निषिद्ध गुरु के लक्षण तत्त्व सागरे,
कालदंतो सितोष्ठश्च दुर्गंधः श्वास दूषकः।
बह्वाशी दीर्घमूची च विषयादिषु लोलुपः॥
बहु प्रति ग्रहासक्तो गुरुर्न स्यात्कदाचन–
तथा कुष्टादि रोगार्त्तो गुरुः कार्योनकर्हिचित्त॥
नास्तिका दाम्भिकाः पापा लोकद्वय विवर्जिताः।
चरंति धन लोभेन नीच वर्णाः सुवेषिणः॥

पुश्चली पतयः क्रूरा नानामत धराः खलाः।
शठास्ते दूरतो हेया गुरुत्वे धर्म भीरुणा ॥

अर्थ—भयंकर दांत वाले, काले ओष्ठ, दुर्गंधित श्वास वाले, बव्हाहारी, आलसी, विषय लोलुप, सदा सर्व दान लेने वाले को कदापि गुरु नहीं करना चाहिये।

कुष्ठ रोगी, नास्तिक, दम्भी पापी, धन के लोभ से नीच वर्ण वाले, सुन्दर वेषधारी, वेश्यागामी, क्रूर, नाना मतों को धारण करने वाले दुष्ट ऐसे लक्षण वालों से धर्म वृद्धी की इच्छा वाले साधक को सदा दूर ही रहना चाहिये।

ब्रह्म वैवर्त पुराण श्रीकृष्ण खंड में दीक्षा का फल भी वर्णन किया है।

वयो हीना तथाल्पायुर्ज्ञान हीनाद पंडितः।
विद्याहीनाद्भवन्मूर्खो जातिहीनात्मयोभवेत् ॥
मूर्खान्मूर्खो भवेत्सद्यो दुःखी चाश्रमहीनतः।

अर्थ—अपने से अवस्थाहीन से दीक्षा लेनेसे अल्पायु और विद्या हीन से मूर्ख और जाति हीन से दीक्षा ग्रहण करने से नाश; तथा मूर्ख से मूर्ख और आश्रम हीन से दुःखी होता है।

सत् शिष्य लक्षण

शिष्य लक्षण भी शास्त्रों में वर्णित है—

अलुब्धः स्थिर गात्रश्च आज्ञाकारी जितेन्द्रियः
आस्तिको दृढ़ भक्तश्च गुरौ मंत्रे च दैवते।
एवं विधो भवेच्छिष्यः इतरो दुःख कृद्गुरोः ॥

अर्थ—लोभ रहित, स्थिर गात्र, आज्ञाकारी जितेन्द्रिय, आस्तिक नाम वेद शास्त्र में श्रद्धा वान और गुरु मंत्र तथा देवता में दृढ़ भक्ति ऐसा शिष्य दीक्षा का अधिकारी है और इन गुणों से रहित शिष्य गुरू को दुःख देने वाला ही जानना।

● मंत्रमुक्तावल्यां ●

अश्रद्दाधाना विश्वास रहिताः कुलपासनः ।
निंदका नास्तिकाः क्रूरास्तथास्वेच्छाविहारिणः
मत्सरा कुल चित्ताश्च पर वस्त्वपहारकाः ।
मातृ पितृ कुलाचार्य्य गुरू सेवा विवर्जिताः ॥
वर्णाश्रम विहीनश्च नित्य कर्म विवर्जितः ।
गणिका लंपटः कामी क्रोध लोभ परायणः ॥
वेद शास्त्र गुरूक्तीनां स्वतर्केण विखंडकः ।
गुरुद्रव्येच्छया सेवी दंभी धर्मध्वजः खलः ॥
इत्याद्यव गुणैर्युक्तो यदि साक्षात्पुरंदरः ।
नोच्चार्यः क्वापि शिष्येति मंत्र दानेतुकाकथा ॥

अर्थ—विश्वास रहित कुल को कलंकित करनेवाला, निन्दक, नास्तिक, क्रूर स्वेच्छाचारी, दूसरेके ऐश्वर्य को देख के जलने वाला, परद्रव्य हरण करने वाला, माता पिता, कुलाचार्य्य, गुरु सेवा न करने वाला, बर्णाश्रम धर्महीन, नित्य-कर्म को त्याग करने वाला, वेश्या गामी, काम;

क्रोध, लोभ परायण; वेद शास्त्र, गुरू वाक्योंको न मानने वाला तथा अपने तर्क से उनके वाक्यों को खंडन करने वाला, गुरू द्रव्य की इच्छा करने वाला, दंभी, दिखाने को धर्म आचरण करने वाला इन दोषों युक्त यदि साक्षात् इन्द्र भी हो तो भी उसे शिष्य कह के नहीं संबोधन करना फिर मंत्र देने की तो बात ही क्या है।

❀ अगस्ति संहितायां ❀

आलसा, मलिना, क्लिष्टा दांभिका कृपणास्तथा
दरिद्रा रोगिणो तुष्टा रोगिणो भोग लालसाः।
असूया मत्सर ग्रस्ताः शठाः परुषवादिनः॥
अन्यायोपार्जित धनाः पर दार रताश्चये।
गृहीणी दास रूपाश्च हेया मूढ़ाःश्वपाकृवत्॥

अर्थ—आलसी, मलिन, कठोर हृदय, दांभिक, लोभी, दरिद्री, रोगी, असन्तोषी, भोग, लंपट, निन्दा करने वाला, दूसरे के ऐश्वर्य से जलने वाला, स्वार्थी, कठोर भाषी, अन्याय से

द्रव्य सम्पादन करने वाला पर स्त्री गामी, तथा स्व स्त्री का दास, अर्थात् स्त्री की आज्ञा में चलने वाला ऐसे लक्षण युक्त को चांडाल-वत् दूर से परित्याग कर देना चाहिये।

❀ नारदीये ❀

नास्तिकं भिन्न मर्यादं दांभिकं लुब्ध चेतसां।
विद्वान्वैवानु गृण्हीयात्तं शिष्यं नरक प्रदं॥

अर्थ—नास्तिक, शास्त्र मर्यादा को उल्लंघन करने वाला, दांभिक, लोभी ऐसे नरकप्रद शिष्य को विद्वान कदापि दीक्षा न देवे परन्तु उसका परिहार भी वहीं कहा है।

सर्व लक्षण हीनोपि गुरौदेवे च भक्तिमान्।
प्रायश्चित्तेन संशोध्य सोऽनुग्राह्य इतीश्वरः॥

अर्थ—पूर्वोक्त लक्षण हीन होने पर भी गुरु देवता में श्रद्धावान होतो उसे प्रायश्चित्तादि से शुद्ध करके सद्गुरु उसे दीक्षा प्रदान करें।

स्त्रियों का मन्त्र ग्रहण को अधिकार

प्रश्न—हे भगवन् स्त्रियों को भी क्या दीक्षा ग्रहण में अधिकार है।

उत्तर—श्रीकृष्ण खंड में श्रीकृष्ण ने नंदजी से कहा है।

❀ ब्रह्मवैवर्त पुराण ❀

या स्त्री भर्त्ताविद्युक्तापिस्वा चार संयुता शुभा।
सा च मंत्रान्प्रगृह्णातुसभर्त्रा चदनुज्ञया ॥
स भर्तृका च बिधवा विष्णु भक्ति करोतिया।
समुद्धरति चात्मानं कुलमे कोत्तरं शतम् ॥
गुरु मंत्र जपाद्देवः पति भक्त्या च तुष्यते।
पति सेवा विरोधः स्याद्येषु यज्ञादि कर्मसु ॥
तानि नैवा चेरत्साध्वी पृथग्भूत्वा पतिव्रता—
अतएवहि नारीणां मंत्रदानं न वर्जितं।
मंत्रेणांतर्विशुद्धिश्च पति सेवा सहायता ॥

अर्थ—जो सौभाग्यवती अपने आचार से शुद्ध हो सो पति की आज्ञा से मंत्र दीक्षा ग्रहण

करे। जो स्त्री सौभाग्यवती अथवा बिधवा विष्णु भक्ति वा शिव भक्ति करती है वह दीक्षा ग्रहण से एक सौ एक कुल का उद्धार करती है। भगवान पतिभक्ति और गुरु मंत्र जप से प्रसन्न होते हैं इससे यदि शुभ कर्म से पति सेवा में विरोध पड़ता हो तो उन कामों को पतिव्रत साध्वी कदापि न करे इससे स्त्रियों को दीक्षा ग्रहण बर्जित नहीं क्योंकि मंत्र ग्रहण से अन्तर्वि शुद्धी होती है।

प्रश्न—हे भगवन् यदि साधक को सद्गुरू की प्राप्ति न हो तो क्या करना चाहिये।

उत्तर—यदि शिष्य अपने को उपयुक्त अधिकार प्राप्त कर ले और संसार को दुःख रूप जान के उससे उद्धार की तीव्र इच्छा हो तो उसको निःसंदेह सद्गुरु के दर्शन होंगे। प्रकृति का नियम है कि जिसका जितना अधिकार होगा और साधक में जितना वैराग्य

होगा उसी के योग्य गुरु भी अवश्य मिलेंगे इससे साधक अपने को अधिकारी बना लेवे पीछे गुरू का खोज करे इतने पर भी यदि सद्गुरू प्राप्त न हो तो शीघ्रता नकरे—किन्तु सद्गुरु प्राप्ति के अर्थ कुछ अनुष्ठान करे। और ईश्वर से प्रार्थना करे तो अवश्यमेव सद्गुरु की प्राप्ति होगी इसमें किंचितमात्र संदेह नहीं।

दीक्षा ग्रहण विधि

प्रश्न—हे भगवन् दीक्षा ग्रहण किस विधि से करना चाहिये।

उत्तर—दीक्षा ग्रहण उत्तरायण और दक्षिणायन दोनों में होता है परन्तु जेष्ट, भाद्रपद, पौष त्याज्य हैं और किसी आचार्य के मत से चैत्र और आषाढ़ भी त्याज्य हैं बाकी सब शुभ हैं वारों में शनि भौम त्याज्य हैं ऐसे ज्योतिष शास्त्रानुसार शुभ मुहूर्त में साधक का चन्द्र बल देख के गणेश नवग्रहादि पूजन कराके मन्त्र दीक्षा

ग्रहण अधिकार प्राप्त्यर्थ यथाशक्ति गोदानादि चन्द्रायण गायत्री जपादि कराके मास तिथि वारादि उच्चार पूर्वक संकल्प करे विधिवत् गुरू की पूजादि करके वस्त्र, पात्र, खड़ाऊ आदि शक्त्यानुसार सर्व सामग्री समर्पण कर दीक्षा लेना योग्य है।

दीक्षा ग्रहण योग्य स्थान

दीक्षा देवालय, नदी तीर वा सद्गुरू के स्थान पर तथा शालिग्रामादि के समीप, पीपल बट, तुलसी, आंवला, आम आदि पवित्र वृक्षों के नीचे अथवा अपने गृह में दीक्षा लेना शास्त्रों में वर्णन किया है।

अथवा सद्गुरू की जब जिस समय पूर्ण कृपा हो उसी समय उसी स्थान पर दीक्षा ग्रहण करना शास्त्रों में देखा जाता है और प्रमाण भी मिलते हैं।

प्रथमोऽध्यायः समाप्त।

द्वितीय अध्याय ।

पञ्चतत्व और उनके देवताओंका वर्णन

प्रश्न—हे प्रभो आपने पूर्व कहा था कि पंच तत्वों से शरीर उत्पन्न होने के कारण जिस शरीर में जिस तत्व की अधिकता हो उसी तत्व के अधिष्ठातृ देवता का मंत्र ग्रहण करना उचित है इस विषय को सविस्तर समझा के कहिये ।

उत्तर—हे प्रिय आकाश, वायु अग्नि, जल, पृथ्वी ये पंच महाभूत हैं—इनके पांच देवता हैं । शिव, गणेश, सूर्य, विष्णु, शक्ति इन पंच तत्वों में जिसके शरीर में जिस तत्व की प्रधानता होगी उसी तत्व के स्वामी की उपासना में उसकी रुचि परस्पर स्वामी सेव्य भाव से होना अनिवार्य है—इससे प्रायः ऐसा

देखा जाता है कि कुल देवता शिव है और साधक को विष्णु या शक्ति में प्रेम विशेष देखा जाता है इससे साधक की रुचि और प्रकृति का विचार करके सद्गुरू से मंत्र उपदेश करना चाहिये इसी से साधक को कल्याण होगा अन्यथा कुछ लाभ न होगा।

आज कल के तो सम्प्रदायों में तथा तीर्थों में प्रायः यह रीति है कि शिष्यों को एक पंक्ति में बैठा के महंत जो अपने सद्गुरू से प्राप्त मंत्र को सुनाते हुये चले जाते हैं। अंत तक पहुँच के कह देते हैं कि अब तुम लोग शिष्य होगये कंठी देके कह देते हैं कि रुपया मुनीम जी के पास जमा कराके अपना नाम लिखा दो और अपना पता लिखा दो। तथा लोटा धोती भंडार में जमा कर दो यह विधि शास्त्रोक्त न होने से उसका फल पूर्ण रीति से प्राप्त नहीं होता।

मन्त्र भेद व उसका रहस्य

प्रश्न—हे भगवन् मन्त्रों में भी कुछ विचार वा भेद होता है अथवा एक ही विष्णु मंत्र वैष्णव मात्र को और एक ही शिव मंत्र शैव मात्र को उपदेश किया जाता है।

उत्तर—हे प्रिय महादेव जी ने चार प्रकार के मंत्र कहे हैं १—सिद्ध, २—साध्य, ३—सुसिद्ध, ४—अरि तिनका फल भी मंत्र शास्त्र में वर्णन किया है।

सिद्धः सिध्यति कालेन साध्यस्तु जप होमतः।
सुसिद्धः प्राप्ति मात्रेण साधकं भक्षाये अरिः॥

अर्थ—सिद्ध मंत्र कुछ ही काल में फल देता है साध्य पुरश्चरणादि, जप, होम, ब्राह्मण भोजनादि विधिवत् करने पर कालान्तर में फलप्रद होता है परन्तु सुसिद्ध मंत्र गुरु मुख से प्राप्ति मात्र से फल देता है और अरि नाम शत्रु

मंत्र साधक को नाश कर देता है। इससे इस विषय का जो पूर्ण ज्ञाता हो उसी से अपने कल्याणार्थ दीक्षा लेनी चाहिये अन्यथा महान हानिकर होता है। जो समर्थ गुरू इन बातों का बिचार न कर के पूर्व कथनानुसार एक ही मंत्र सब को देते हैं। उनमें जिस साधक को भाग्यवश सिद्ध वा सुसिद्ध मंत्र प्राप्त हो जाता है उसकी तो परमार्थ में उन्नति होती है और अन्यों को कुछ भी लाभ प्रतीत नहीं होता और शत्रु मंत्र होने से साधक का सर्वनाश भी होता हुवा प्रत्यक्ष देखा गया है इससे शिष्य के कल्याणार्थ मंत्र शास्त्रोक्त सिद्धादि विचार करके उपदेश करना चाहिये इसीसे वेद शास्त्र और पुराणों में गुरू की परीक्षा करने को कहा है और उनके लक्षण भी वर्णन किये हैं।

तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुःश्रेयमुत्तमं ।
शाब्दे परे चनिष्णातं ब्रह्मण्यु पसमाश्रयं ॥

अर्थ—कल्याण की इच्छा वाला जिज्ञासु शास्त्रज्ञ और वेदज्ञ तथा उपासना तत्व को पूर्णतया जानने वाले गुरू की शरण जाय।

प्रश्न—हे भगवन् इन लक्षणों से रहित किसी महात्मा या सामान्य पंडित से उपदेश लेने में क्या फल होता है सो भी कृपा करके वर्णन करिये ।

ब्रह्म वैवर्त पुराण श्री कृष्ण खण्ड में श्री कृष्ण नंद संवाद में वर्णन किया है।

वयोहीनात्तथाल्पायुर्ज्ञानहीना द पण्डितः ।
विद्याहीना भवेन्मूर्खो जातिहीनात्क्षयो भवेत् ॥
मूर्खोन्मूर्खान्भवेत्मद्यो दुःखी स्त्रा श्रम हीनता ।
यशोहानिः पितृ मंत्रान्मृत्युः पाखंडिनस्तथा ॥
व्याधिना व्याधियुक्तश्च निर्वंशो वंश हीनतः ।

विष्णु भक्ति विहीनाश्च भक्ति हीनो भवेद्ध्रुवं ॥
शैवाच्छाक्तादगृहीत्वात्तु हरौ भक्तिर्नवर्धति॥

अर्थ—अवस्थाहीन से मंत्र लेने पर साधक अल्पायु, और ज्ञान हीन से मूर्ख, विद्याहीन से मूर्ख, जातिहीन से तेजहत, मूर्ख से मंत्र ग्रहण करने पर शीघ्र मूर्ख और अपने से आश्रम में हीन हो तो दुखी होता है, पिता से मंत्र लेने में यश की हानि, पाखंडी से लेने में मृत्यु होती है, रोगी सें मंत्र लेने पर रोग युक्त और वंशहीन से निर्वंश होता है।

विष्णु भक्तिविहीनसे मंत्र लेने पर भक्तिहीन होता है शैव या शाक्त नाम शक्ति उपासक से लेने पर हरि भक्ति रहित होता है। कारण यह है कि जो जिस देवता का भक्त हो उसमें उसका प्रेम अधिक होगा इससे उसी देवता का मंत्र ग्रहण करने से उसी देवता में साधक की भी

रुची और प्रेम दोनों का एक चित्त होने से अधिक होगा।

विद्या दाता मंत्र दाता ज्ञान दाता च भक्तिदः।
जन्म दातान्नदाता च मातान्ये गुरु वस्तथा॥
पूज्योवंद्यश्च सेव्यश्च मातुः शत गुणो गुरुः।

अर्थ—विद्या दाता, मंत्र दाता, ज्ञान दाता तथा भक्ति दाता ये चारों गुरू कहाते हैं ये सब वंद्य और पूज्य हैं इससे माता से भी शत पट गुरू अधिक पूज्य हैं। इसी से शंकराचार्य्य जगद्गुरू ने भी शतश्लोकी में गुरू की महिमा वर्णन करते हुये कहा है—

दृष्टांतो नैव दृष्टस्त्रिभुवन जठरे सद्गुरोर्ज्ञानदातुः।
स्पर्शश्चेत्तत्र कल्प्यः सनयति यद हो स्वर्ण-
तामश्मसारं स्पर्शत्त्वं तथापि श्रित चरण युगे॥
सद्गुरुः स्वीय शिष्ये स्वीयं साम्यं विधत्ते।
भवति निरूपमस्तेन वा लौकिकेपि॥

अर्थ–ज्ञान दाता सद्गुरू के समान तीनों लोकों में कोई वस्तु दृष्टांत देने योग्य नहीं है। यदि पारस की उपमा दी जाय तो वह केवल लोहे को सोना बना देता है। परन्तु वह सोना दूसरे को सोना नहीं बना सकता। परंच सद्गुरू तो शिष्य को अपने समान बना देते हैं अर्थात् वह भी अन्य शिष्य को अपने सदृश्य दूसरों को ज्ञानी बना सकता है इसी से सद्गुरू को निरूपम शास्त्रों में वर्णन किया है। यद्यपि यह विषय पूर्व में आचुका है तथापि विशेष उपयोगी जानके पुनः विशेष रूप से साधकों के हितार्थ लिखा गया है।

॥ द्वितीयोध्यायः समाप्तः ॥

❀ तृतीय अध्याय ❀

मंत्र जप विधि ।

प्रश्न—हे भगवन् दीक्षा विधि तथा गुरु शिष्य लक्षणादि सर्व विषय आपने सविस्तार और सप्रमाण वर्णन किया अब कृपा करके मंत्र जप की विधि भी समझाय के कहिये ।

उत्तर—मंत्र जप के प्रथम ऋषि छंद् देवता आदि का उच्चार पूर्वक न्यास, ध्यान करके जप करना चाहिये ।

मंत्र महोदधि में कहा है ।

ऋषि छंदोऽपरि ज्ञानान्न मंत्रः फल भाग्भवेत् ।
दौर्बल्यं याति मंत्राणां विनियोगम जानताम् ॥

छंद, ऋषि को न जान के और उनका उच्चारण न करके जप का पूर्ण फल नहीं होता। विनियोग न जानने से मंत्र बलहीन होजाते हैं।

प्रश्न—हे भगवन् ऋषि, छंद, देवता का उच्चारण मात्र करने से मंत्र बलवान हो जाता है। अथवा इसका अन्य भी कुछ तात्पर्य्य है।

उत्तर—हे प्रिय प्रत्येक मंत्र के ऋषि, छंद, देवता, बीज, शक्ति, कीलक, न्यास, ध्यान भिन्न २ होते हैं तिनमें प्रथम ऋषि का उच्चार करते समय उनका ध्यान करना चाहिये कि वे हमारे पास विराजमान हैं ऐसा ध्यान करने से उनका बल अपने में आने से मंत्र जप फल-दायी होता है ऐसे ही छंद, बीज, शक्ति का उच्चार करने से भी पूर्वोक्त फल होता है तथा देवता का नामोच्चारण करके उस देवता का ध्यान और मानसिक पूजन करके जप करना चाहिये उससे जप का शास्त्र विधि अनुसार पूर्ण फल होता है यह शास्त्र का रहस्य है जिसको इतना सामर्थ्य नहीं है वह केवल वाणी मात्र से ही ऋषि, छंद, देवता, बीज, शक्ति,

कीलक का उच्चार कर लेवे ऐसे शास्त्र की आज्ञा है।

प्रश्न—हे भगवन् जप नित्य एक बार या दो बार करना चाहिये।

उत्तर—अपने इष्ट मंत्र का जप प्रातः सायं करना चाहिये परन्तु पुरश्चरण एक ही बार करने की शास्त्र में विधि वर्णन की है।

॥ पुरश्चरण विधि ॥

प्रश्न-हे भगवन् पुरश्चरण की क्या विधि है।

उत्तर—पुरश्चरण शुभ मुहूर्त में आरम्भ करके नित्य स्नान कर पवित्र वस्त्र धुला हुआ या रेशमी धारण करके शुद्ध गोबर से लिपी हुई भूमी पर एकान्त में कुशासन उस पर कंबल आदि बिछा के बैठे, प्रथम आचमन प्राणायाम कर संकल्प करना पश्चात् छंद, ऋषि आदि पूर्व कथनानुसार उच्चारकर न्यास करके ध्यान करके मानस पूजनकर जप दोपहर में १२ बजेतक करना

आमध्यान्ह जपं कुर्यात्। पीछे भोजनादि करना परन्तु किसी दिन कम वा अधिक नहीं करना किन्तु नित्य एक संख्या यावत् पुरश्चरण पूर्ण न हो तावत् उतनी ही संख्या करना चाहिये।

प्राणायाम की विधि

प्रश्न—हे भगवन् आपने कहा कि आचमन कर प्राणायाम करके छंद ऋषी का उच्चारण करना सो प्राणायाम की विधि भी सविस्तार वर्णन करिये।

उत्तर—प्रथम केशवायनमः नारायणायनमः माधवायनमः इन तीन नामों को उच्चारण करते हुये ३ आचमन करे फिर माधवायनमः कह के हाथ धो डाले।

पश्चात् कनिष्ठिका नाम छंगुनी और उसके पास वाली दोनों उँगलियों से बांई नाक बंद कर दाहिनी नाक से गायत्री वा अपना गुरु मंत्र जो गुरू की आज्ञा हो उसी के अनुसार

वायु भीतर खींचते हुये जब तक मंत्र पूरा न हो तब तक खींचै फिर दोनों नाक बंद कर अर्थात् दो उँगली से बाईं नाक बंद की है तैसे ही अंगूठे से दूसरी नाक बंद करके एक गायत्री वा अन्य मंत्र का जप पूरा हो उतनी देर रोके पीछे दोनों उँगली छोड़के बाईं नाक एक गायत्री वा अन्य मंत्र का उच्चार करते हुये धीरे धीरे वायु को छोड़े ऐसे पूरक, कुंभक, रेचक मिल के एक प्राणायाम हुआ ऐसे तीन प्राणायाम करके ऋषि छन्दादि का उच्चार कर पुरश्चरण का संकल्प करे उसकी विधि ऐसी है।

अद्य शुभ पुण्य तिथौश्री परमेश्वर प्रीत्यर्थं अमुक मंत्रस्य पुरश्चरणत्वेनसपाद लक्ष जपं करिष्ये।

(पुरश्चरण का पहले दिन का संकल्प)

यह संकल्प पहले करना पश्चात नित्यका पुरश्चरण का संकल्प करना।

(पुरश्चरण का नित्य करने का संकल्प)

अद्य शुभ पुण्य तिथौश्री परमेश्वर प्रीत्यर्थ-
पूर्व संकल्पित संख्या परि पूर्णता सिद्धये।
यथा संख्यअमुक मंत्रस्य जपं करिष्ये॥

जप समाप्त होने पर फिर न्यास कर और अंत का संकल्प कर समाप्त करे।

(अन्त का संकल्प)

अनेन यथा संख्य अमुक मंत्र-
जपेन श्री परमेश्वरः प्रीयता।

पश्चात् आसन के नीचे बुंद भर जल डाल के उँगली से उस जल की मट्टी को लेके माथे में लगावे।

इसका कारण यह है कि-

यस्मिन्स्थाने कृतं कर्म शक्रो हरति तत्फलं।
तन्मृदा लक्ष्म कुर्वीत ललाटे तिलकाकृति॥

त्रिभुवन का राजा इन्द्र है इससे जिस स्थान में जप किया है वह स्थान इन्द्र के राज्य में होने से इन्द्र उस जप के फल को ले लेता है इस कारण वहां जल डाल के अँगुली से घिसके माथे में तिलकाकृति लगा लेवे उससे वह अपने को ही प्राप्त होता है। ऐसी शास्त्र की आज्ञा है।

विशेष सूचना

बड़ा संकल्प प्रथम तो सबको आता नहीं और दूसरे कम से कम ५ मिनट संकल्प ही में लगेंगे इसलिये ये छोटा संकल्प बना के लिखा गया है। इस से शास्त्र विधि भी होगई और समय भी बहुत नहीं लगा।

प्रश्न—हे भगवन् आज कल नौकरी करने वाले तथा खेती वा दुकान आदि का व्यापार करने वाले पूर्वोक्त नियम से तो इनमें से किसी

से भी एक पुरश्चरण न हो सकेगा और आप तो कहते हैं कि दीक्षा लेना तो पुरश्चरण अवश्य करना चाहिये नहीं तो दीक्षा लेने से क्या लाभ है जैसे केवल कचहरी में नाम लिखाने मात्र से कुछ लाभ नहीं हो सकता इससे कोई ऐसा सरल उपाय बतलाइये जिसमें जीविका का कार्य्य भी चला जाय और साथ ही ईश्वराराधन भी होता जाय।

उत्तर—हे प्रिय तुम्हारा कहना यथार्थ है यद्यपि इस समय पूर्वोक्त रीति से कार्य सिद्धी होना अति कठिन है तथापि कुछ समय तो लगाना ही पड़ेगा इसके लिये कुछ नियमों का परिवर्त्तन करके बताते हैं ध्यान देके सुनो।

जैसे शास्त्र में एक स्थान और एक आसन कहा है उसमें एकआसन ऊनका रखना नित्य उसी आसन पर जप करना यदि बाहरजाने काकाम पड़े तो भी उसी ऊनी आसन पर जप करना स्थान का

नियम नहीं संख्या में जो एक संख्या का नियम अंत तक रखने की आज्ञा है सो न कर नित्य यथा संख्य संकल्प कर जो पूर्व कहि आये हैं सो करके न्यास ध्यान कर जप करे और नित्य जप की संख्या लिखते जाय अंत में संख्या पूरी होने पर हवन करना। परन्तु जप १२ बजे तक ही करना जिसमें शास्त्र मर्य्यादा का उल्लंघन न हो।

जप ५०० से कम न हो अधिक जितना हो सके करते जाना इस रीति से गृहस्थ व्यापारी नौकरी वाले भी तथा खेती करने वाले भी पुरश्चरण कर सकते हैं।

प्रश्न—पुरश्चरण विधि तो आपने बड़ी सुगम रीति से वर्णन की अब कृपया हवन विधी भी कहिये।

पुरश्चरण के हवन विधि में दशांश हवन शास्त्रकारों ने वर्णन किया है और उसका

दशांश तर्पण, उसका दशांश मार्जन, उसका दशांश ब्राह्मण भोजन करने की शास्त्राज्ञा है अर्थात् जैसे एक लक्ष्य जप किया तो उसका दशांश १० हज़ार हवन उसका दशांश १ हज़ार तर्पण उसका दशांश १०० मार्जन उसका दशांश १० ब्राह्मण भोजन हुआ।

प्रश्न–हे भगवन् जिसे इतना करने की सामर्थ्य न हो तो उसका पुरश्चरण अधूड़ा ही होगा।

उत्तर–हे प्रिय नहीं २ उसका उपाय भी शास्त्रों में कहा है सुनो–जो विरक्त है अथवा असमर्थ है वह केवल जप संख्या से चतुर्थांश जप और करले जैसे १ लक्ष जप किया तो २५ हज़ार जप और करले तो विरक्त को तर्पण मार्जन, ब्राह्मण भोजनादि कराने की कोई आवश्यकता नहीं परन्तु गृहस्थ को चतु-

थाँश जप करके १ लक्ष के पीछे एक हज़ार हवन और यथा शक्ति ब्राह्मण भोजन तिसमें भी अधिक न हो सके तो जो हवन करावें उन ब्राह्मणों को तो अवश्य भोजन कराना चाहिये यह गृहस्थों के लिये है।

प्रश्न—हे भगवन् आपने जो सबके निर्वा-हार्थ विधी वर्णन की उससे सब की कार्यपूर्ती हो जायगी परन्तु आहुती कितनी होनी चाहिये और शाकल्य का वजन ग़रीबों के निर्वाह और कर्म पूर्ती के अर्थ कितना होना चाहिये सो भी कृपया वर्णन कीजिये।

उत्तर—हे प्रिय यह प्रश्न तुमने बड़ा ही कठिन किया कि ग़रीब के निर्वाहार्थ। अस्तु इसे भी यथा मति कहते हैं श्रवण करो। महर्षियों का बचन है कि 'वित्तशाठ्यं न कर्त्तव्यं' अर्थात् वित्त शाठ्य न करना तात्पर्य

यह कि सामर्थ्य से न्यून और सामर्थ्य से बाहर भी नहीं करना। यदि सामर्थ्य होने पर भी कही हुई रीति से करेगा तो सब किया हुआ निष्फल होगा क्योंकि राजा ने एक हज़ार गो दान किया और सामन्य मनुष्य १ गो दान करेगा तो उसी राजा के दान के समान ही फल होगा। परन्तु शास्त्र विधि और श्रद्धा भक्ति पूर्वक सात्विक भाव से करने पर राजा से भी अधिक फल होगा राजा संपन्न है उसको इतने में कुछ कष्ट नहीं परन्तु सामान्य गृहस्थ को तो एक गौ ही बहुत है ऐसे ही सब कार्य्य में जानना। अब शाकल्य के वज़न का यह नियम है कि धनवान को जैसे पंडित लोग कराते हैं वैसे ही कराना चाहिये। परन्तु ग़रीब को १ हज़ार आहुती के लिये सेर भर तिल, आध सेर चावल, पाव भर जौ, आधपाव मेवा, आध पाव शक्कर, छटांक भर घी इतना

मिला के अंगुष्ठ मध्यमा बड़ी उँगली और उसी के पास वाली दूसरी उँगली जिसे अनामिका कहते हैं ये तीनों मिलाने से इनमें जितनी शाकल्य समावे उतनी आहुती देने से बराबर १ हज़ार आहुती होती हैं। कई बार गिनके आहुती का निश्चय किया है।

प्रश्न—हे भगवन् पुरश्चरण करते समय वर्तमान समयानुसार कौन कौन नियम पालन करना चाहिये।

उत्तर—इस समय यद्यपि शास्त्रोक्त सब नियम पालन करना कठिन है, राज्य पाश्चात्यों का है इससे यथा राजा तथा प्रजा इस वाक्यानुसार सब की बुद्धि विपरीत होके नास्तिकता का अधिक बर्ताव हो रहा है तथापि श्रद्धावान और सात्विक प्रकृती वालों को आवश्यक पालनीय नियम तो अवश्यमेव साधने चाहिये।

तिनमें जहाँ तक हो सके व्यर्थ निष्प्रयोजन मिथ्या भाषण, दूसरे को किसी प्रकार हानि पहुँचाना, चोरी करना, पर स्त्री सेवन, पर स्त्री से कुदृष्टी यह सर्वथा त्याग देना चाहिये और सात्विक भोजन गेहूँ, जौ, मूंग अरहर की दाल, साग हलके मादक वा त्याज्य शाक नहीं जैसे-शलगम, गाजर, लहसुन, प्याज, लाल मिर्चा इन्हें त्याग देना चाहिये यह नियम सामान्य हैं इन्हें पालन कर पुरश्चरण करने से अवश्य चित्त में शांति, तेज, बुद्धी आदि होंगे परन्तु अन्न शुद्ध कमाई का हो छल कपट से उपार्जित नाम कमाया न हो अपने परिश्रम से उपार्जन किया हुआ हो।

प्रश्न—हे प्रभो पुरश्चरण में ब्रह्मचर्य भी रहना चाहिये तो उसका विधी भी कृपया वर्णन कीजिये।

उत्तर—हे प्रिय गृहस्थ को तो एक पत्नी व्रत ही ब्रह्मचर्य है। परन्तु इसमें थोड़ा नियम भी है कि ऋतु गामी होना अर्थात् ऋतु के प्रथम ४ दिन छोड़ के पांचवें दिन से १६ वें दिन तक तिनमें भी ११, १५, ३० अति गंड व्यती पात बधृत भद्रा आदि कुयोग-शनि, भौम वार इनको भी त्याग देना चाहिये क्योंकि इन पर्वकाल तथा कुयोगों में जो संतान उत्पन्न होती है वह महा क्रूर और दुष्ट प्रकृति तथा निर्बुद्धी और निर्बल उत्पन्न होती है।

अष्टमैथुन त्याग

प्रश्न—हे भगवन् गृहस्थ का ब्रह्मचर्य तो आपने कहा परन्तु विरक्त के लिये ब्रह्मचर्य के क्या २ नियम हैं सो भी कृपा करके कहिये।

उत्तर—हे प्रिय विरक्त के लिये अष्टमैथुन त्यागरूप ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिये। अन्यथा अपने कर्म से च्युत होकर पतित हो जायगा।

पातांजलि भगवान ने अष्ट प्रकार का मैथुन कहा है।

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्य भाषणं ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निष्पत्तिरे ।
वच एतन्मैथुनमष्टागं प्रवदंति मनीषिणः ॥

अर्थ—देखी हुई स्त्री का बारंबार स्मरण करना दूसरा कीर्त्तन, अपने मित्रों से उसके रूप का वर्णन करना, तीसरा केलि, उस स्त्री से हास्य विनोद करना। चतुर्थ प्रेक्षण नाम बारंबार उसको देखना। पंचम गुह्य भाषण, एकांत में बातचीत करना। षष्ट संकल्प उसकी प्राप्ति का उपाय सोचना। सप्तम अध्यवसाय, उसकी प्राप्ति का निश्चय करना। अष्टम क्रिया, निष्पत्ति उससे दुष्कर्म करना। यह आठ प्रकार का मैथुन है इन आठों का नियम पूर्वक परित्याग करना चाहिये।

प्रश्न—हे भगवन् इस ब्रह्मचर्य्य पालन का क्या उपाय।

उत्तर—इसका उपाय बहुत सरल है। परन्तु नियम पूर्वक करे तो अवश्य लाभ होता है।

प्रथम स्त्री मात्र के आंख से आंख न मिलावे क्योंकि इनके आंख ही में विष है जैसे सर्प के दांत में और बिच्छू के डंक में तैसे स्त्री के आंख में और मंद हास्य में हलाहल विष भरा है। इससे स्त्री मात्र को देखना ही नहीं यदि दृष्टि पड़ जाय तो तत्क्षण दृष्टी हटा के उसके चरणों पर दृष्टी करना यही ब्रह्मचर्य्य पालन का अमोघ उपाय है।

जो इस नियम को पालन करेगा वह थोड़े दिन के अभ्यास से अपने कार्य में सफल होगा। इसके बिना दो एक और भी उप नियम हैं जिनसे ब्रह्मचर्य्य की रक्षा सरलता से हो सकती है।

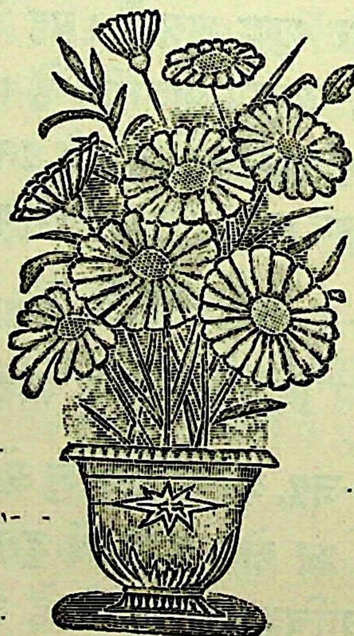
एक तो बिछौना कड़ा रक्खे गद्दा आदि नरम बिछौने पर कदापि न सोवे, सुगंधित तेल पुष्पों की माला धारण न करे, उपटन तेल आदि न लगावे, गरम पदार्थों का सर्वथा त्याग करे, सदा एकान्त में रहे, निरन्तर जप पाठ आदि में तत्पर हो सदा सात्विक भोजन करे और विरक्तों का सत्संग करे, भिक्षान्न भी परम सात्विक और शुद्ध अन्न है। यह धर्म विरक्त ब्रह्मचारी को अवश्य पालनीय हैं। यथा मति और यथानुभूत वर्णन किये जो इनका पालन करेगा वह स्वयं लाभ उठावेगा विशेष क्या कहें।

प्रश्न—हे भगवन् जप कै प्रकार का होता है और किस विधि से करना चाहिये।

उत्तर—जप, वाचिक, उपांशु और मानसिक तीन प्रकार का होता है तिनमें दूसरे को सुनाई पड़े उसे वाचिक जप कहते हैं और मुँह बंद

कर भीतर जिह्वा से जो जप करना उसे उपांशु कहते हैं और जिह्वा भी जब न हिले किन्तु केवल मन में ही उच्चारण किया जाय उसे मानसिक जप कहते हैं। वाचिक जप से उपांशु में दस गुणा पुण्य अधिक होता है और उपांशु से सौ गुणा मानसिक जप होता है।

॥ तृतीयोऽध्याय समाप्तः ॥



चतुर्थ अध्याय।

गुरू करने का प्रयोजन

प्रश्न-हे प्रभो गुरू करने का क्या प्रयोजन है और आंतरिक भेद तथा गुरु शिष्य लक्षण भी सप्रमाण सविस्तर वर्णन किये परंतु अब यह वर्णन करिये कि शिष्य का सदा का क्या कर्तव्य है। और गुरू का क्या कर्तव्य है।

उत्तर—हे प्रिय यह प्रश्न तुम्हारा बड़ा गंभीर और रहस्यमय है। इससे इसका कुछ विस्तार से कहना होगा। प्रथम यह जीव जब संसार के दुःखों से अति पीड़ित हो जाता है तब सत्पुरुषों को दुःख रहित प्रसन्न चित्त देख के उनसे संसार दुख से छूटने का उपाय पूछता है तब वे जिस मार्ग पर चल के अनुपम शांति सुख को प्राप्त हुये हैं वही मार्ग उसे भी समझाते हैं अर्थात् पूर्वोक्त शास्त्र विधि से मंत्र ग्रहण कर निरन्तर उसी में तत्पर रहना यह

बात स्वयं आचरण करते हुये दूसरों को भी वही शिक्षा देते हैं। जैसे आज कल प्रथा चल गई है कि—तीर्थों में गये और वहां जाके किसी प्रसिद्ध महन्त से उपदेश लिया, तीर्थों की उपदेश रीति पूर्व अध्यायों में स विस्तार वर्णन कर आये हैं। उपदेश लेके कदाचित कोई सज्जन एक या दो माला करते हों, नहीं तो १०—२० बार अँगुलियों पर गुरु मंत्र जप लिया तो मानो बड़ा बोझ उतर गया ऐसा मानते हैं बहुत लोग ऐसे भी देखने में आते हैं कि उनसे पूछा जाय कि गुरु मंत्र जपते हो तो उत्तर देते हैं कि महंत जी एक छोर से दूसरी छोर तक मंत्र सुनाते चले गये हमने मंत्र पूरा सुना भी नहीं पीछे महंत जी ने कभी बताया भी नहीं। यह रीति सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है।

आज, कल तो यह प्रथा प्रचलित है कि शिष्यने सोचा कि मैंने जोकुछ आजन्म पाप किये हैं गुरु मंत्र लेने से तत्काल गुरू जी पर लद जांयगे और हम निष्पाप होके मौज करेंगे गुरू जी विचारते हैं कि १०० चेला होगये तो सौ रुपया साल की आमदनी होगई। पुण्य पाप जो करता है उसी को लगता है। हमें पुण्य पाप से क्या काम हमने तो एक बार उपदेश कर दिया। परन्तु गुरू करने का तात्पर्य यह नहीं है किन्तु सद्गुरू की शरण लेने से मोक्ष मार्ग का ज्ञान होता है इससे गुरुउपदेश लेके कम से कम १ हज़ार गुरुमंत्र का जप प्रातः और १००० सायं इतना तो अवश्य करना चाहिये उसी से कालान्तर में इष्ट देव की कृपा प्राप्ति आदि नाना प्रकार के चमत्कार अवश्य होते हैं इसमें किंचित सन्देह नहीं और जो पुरश्चरण करना हो तो नित्य जप कुछ कम

कर देना चाहिये क्योंकि विशेष समय न मिलने से पुरश्चरण न हो सकेगा उसकी विधि पूर्व ही सविस्तार वर्णन करि आये हैं।

शास्त्रों में शिष्य की परीक्षा करके उपदेश देने को कहा है वह शिष्य शांत, गुरु भक्त, सदाचारी हो, ऐसे सुपात्र शिष्य को जब उपदेश दिया जायगा तब उसको मंत्र जप और पुरश्चरणादि में स्वयं रुची होगी और उसी को इष्ट देव की कृपा से देव दर्शन आदि चमत्कार अवश्यंभावी होंगे केवल एक बार गुरुमंत्र सुन लेने से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। अब गुरू का कर्त्तव्य भी सुनो।

गुरु कर्त्तव्य

केवल एकबार उपदेश देके कंठी दे देना इतने मात्र से ही गुरू का कार्य पूरा नहीं हो जाता किन्तु गुरू को तो आजन्म शिष्य का लक्ष्य रखना पड़ता है। प्रथम तो उसके सदाचार पर

विशेष ध्यान देना होता है कि सत् आचरण से विचलित तो नहीं है यदि अभाग्यवश विचलित हो तो कोमल शब्दों से समझा के सदाचार में लगाना, पुरश्चरणादि की विधि सरल रीति से समझा के उसमें प्रवृत्त करना, पुरश्चरणादि से चमत्कार देख पड़ने पर प्रेम भक्ति आगे परा भक्ति तक उपदेशादि द्वारा सहायता करते रहना चाहिये यह विषय अत्यन्त सूक्ष्म है इस रहस्य को श्रेष्ठ महात्मा ही जान सकते हैं परन्तु शिष्यों के बोधार्थ किंचित इंगित मात्र कर दिया है जिसमें सब लोग जान के सचेत हो जांय कि केवल मंत्रोपदेश और कंठीबांध लेने मे ही दीक्षा कार्य की समाप्ती नहीं हो जाती किन्तु अधिकारानुसार उत्तरोत्तर उच्च श्रेणी का अवलम्बन करना होता है तब सालोक्यादि चार मुक्तियों में से अपने भावानुसार एक मुक्ति की प्राप्ति होती है।

॥ चतुर्थोऽध्याय समाप्तः ॥

पञ्चम अध्याय

चित्त स्थिर होने का सरल उपाय।

प्रश्न-हे भगवन् चित्त स्थिर नहीं होता इसका क्या कारण है और इसका जो सरल उपाय हो सो कृपया समझा के कहिये।

उत्तर-१-चित्त स्थिर न होने का मुख्य कारण संसार में आशक्ति और वैराग्य की न्यूनता जितनी ही (वैराग्य की न्यूनता (कमी) होगी) उतनी ही चंचलता अधिक होगी।

२-दूसरा हेतु मस्तिष्क की निर्बलता।

३-तीसरा हेतु सत् शिक्षा का अभाव।

४-व्यर्थ भाषण और मिथ्या भाषण ये भी चित्त की स्थिरता में बड़े विघ्नकारी हैं प्रथम चित्त स्थिर करने की इच्छा वाले साधक को वाणी के संयम का अभ्यास करना चाहिये क्योंकि जिसको अधिक बोलने का व्यसन होताहै

उसे भजन करने का अवकाश ही नहीं मिलता यदि थोड़े काल को बैठा भी तो दिन भर की बातों के संस्कार भजन के समय में स्मरण आवेंगे जिससे किसी प्रकार चित्त की स्थिरता न होगी इससे प्रथम वाणी का संयम करना चाहिये उसका उपाय सदा सत्य भाषण है परन्तु प्रिय और दूसरे के लिये हितकर हो ऐसा कुछकाल नियम करने से ईश्वर की कृपा से वाणी का संयम होने पर चित्त की स्थिरता में अवश्य सहायता होगी।

शिक्षा के अभाव से भी चित्त की स्थिरता में बड़ी बाधा पड़ती है वह बाधा अच्छे २ विरक्त, शान्त और विद्वान महात्माओं के सतसंग से अथवा उत्तम २ धार्मिक महात्माओं के रचे हुये ग्रन्थों को धीरे २ बारम्बार विचार करने से शिक्षा का अभाव जन्य दोष भी दूर हो सकता है।

मस्तिष्क की निर्बलता पौष्टिक औषधियों को बल के अनुसार सेवन करने से निवृत्ति हो सकती है। सब से प्रबल प्रतिबन्ध वैराग्य की कमी है क्योंकि चित्त तो एक है उसे चाहे संसार में लगा लो चाहे परमार्थ में लगा लो।

उद्धव जी जब गोपियों को ज्ञान उपदेश करने ब्रज में गये और गोपियों को नाना प्रकार से उपदेश दिया तब गोपियों ने कहा हे उद्धव जी, "एक तो मन हतो सो गयो श्याम संग को आराधे ईश।"

मन तो एक ही था सो श्याम सुन्दर श्री कृष्ण के साथ चला गया अब तुम्हारे ज्ञान उपदेश को कौन ग्रहण करे। तैसेही जब तक मन संसार के विषय भोगों में लगा है तब तक परमार्थ में चित्त की स्थिरता की आशा करना महा मूर्खता है। यही बात भगवान ने गीता में भी कही है।

अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते ।

अर्थ—अभ्यास से और वैराग्य से ही मन की स्थिरता प्राप्त हो सकती है। तैसे ही पातांजलि ने कहा है—

अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः

अभ्यास वैराग्य से मन का निरोध हो सकता है।

प्रश्न—हे भगवन् चित्त स्थिर न होने के कई कारण आपने वर्णन किये वे सब ठीक हैं अब कृपा करके कोई सरल उपाय चित्त स्थिरता का वर्णन करिये ।

उत्तर—प्रथम जगत को दुःख रूप जानके वैराग्य की मात्रा जितनी हो सके उतनी बढ़ावे बिना वैराग्य के चित्त की स्थिरता का उपाय और साधन करना वृथा है। जब संसार से अरुचि हो तब सर्व प्रथम अपने इष्टदेव अथवा गुरु का चित्र जो अत्यन्त चित्ताकर्षक हो उसके सामने बैठ

के चरण से मुखारबिन्द तक कम से कम ५ मिनट एक २ अंग पर चित्त को रोके।

इस उपाय से थोड़े ही काल में चित्त एक ही स्थान में लगने लगेगा परन्तु जल्दी २ एक स्थान से दूसरे स्थान पर अर्थात् चरणों में थोड़ी देर लगा के तत्काल पिंडरी में लगने का उद्योग न करे अन्यथा एकाग्रता भंग हो के चंचलता बहुत बढ़ जायगी इससे ५ मिनट तक बलात्कार से लगाये रहे। पहिले पहिल तो मन बहुत भागेगा विकल होगा परन्तु कुछ काल के अभ्यास से वहीं स्थिर होने लगेगा ऐसे नित्य पांच २ मिनट एक एक अंग में लगाके कम से कम आध घंटे तक नित्य अभ्यास करना चाहिये।

ध्यान जमाने के साथ अपने इष्ट मंत्र या किसी दो वा तीन अक्षर वाले मंत्र का जप-

साथ ही साथ करते रहना चाहिये इससे ध्यान और एकाग्रता में बड़ी सहायता मिलती है।

ध्येय वस्तु अर्थात् मूर्ति वा चित्र जो अत्यन्त मन को आकर्षण करने वाला हो उसी को अन्त तक रखना चाहिये नहीं तो ध्यान से निराशा ही उठानी पड़ेगी जैसे आज एक चित्र पर ध्यान का अभ्यास किया १०, १५ दिन बाद दूसरा चित्र रख लिया महीना दो महीना बाद फिर और बदल दिया ऐसा करने से एकाग्रता का बल बहुत ही घट जाता है और चंचलता का स्वभाव बढ़ जाता है प्रति दिन अभ्यास के लिये जो समय अनुकूल पड़े उसी समय पर एकही आसन पर करना चाहिये अन्यथा साधक साधना में कभी लाभ नहीं उठा सकता। जैसे आज सबेरे ध्यान किया कल दोपहर को परसों शाम को फिर किसी दिन बिल्कुल नागा ऐसे अनियमित कार्य से वर्षों

में भी कुछ लाभ नहीं हो सकता इससे सबसे उत्तम निर्विघ्न समय प्रातः दो घंटे सूर्योदय से पूर्व शौचादि से निवृत्ति होके स्नान बने तो करे नहीं तो धोती बदल के पवित्र कुशादि आसन पर नरम वस्त्रादि बिछाय के बैठे जिसमें अधिक देर तक बैठने में क्लेश न हो उस पवित्र आसन पर स्वस्तिकासन वा पद्मासन वा सिद्धासन जो अपने को अनुकूल हो गुरू की आज्ञानुसार बांधके मेरु दंड को बिल्कुल सीधा रक्खे इस रीतिसे देरतक बैठने में क्लेश नहीं होता।

आसनों में स्वस्तिकासन जिसे सादी पलथी मार के बैठना कहते हैं वह सब मे सरल है उसी आसन से साधक देर तक बैठ सकता है इससे ध्यान में यही आसन अनुकूल पड़ता है केवल मेरुदंड को अवश्य सीधा रखना चाहिये।

प्रश्न—हे भगवन् कोई २ दीपक की ज्योति

में चित्त को एकाग्र करते हैं इससे क्या लाभ और क्या हानि होती है सो कृपा कर कहिये।

उत्तर–दीपक में दृष्टि लगाने से हानि तो कोई नहीं परन्तु कुछ दिन साकार मूर्ति का ध्यान किये बिना ज्योति का ध्यान अधिक काल तक नहीं ठहर सकता क्योंकि मन का स्वभाव साकार पदार्थ में जमने का जन्म जन्मान्तर से चला आता है उसे एकदम छुड़ा के ज्योति में लगाना कठिन है इससे प्रथम दो वर्ष किसी प्रिय सुन्दर मूर्ति में चित्त की स्थिरता का अभ्यास करना चाहिये।

ध्यान के साथ मंत्र जप का विधान

प्रश्न–हे भगवन् पूर्व आपने कहा था कि ध्यान के साथ इष्ट मंत्र या कोई नाम जो अपने को अति प्रिय हो जप भी करते जाना चाहिये इससे क्या लाभ होता है क्या जप करते २ ध्यान भी हो सकता है। यह विषय

अति गूढ़ होने से ठीक समझ में नहीं आया इससे इस विषय को सरल रीति से सविस्तार वर्णन करिये।

उत्तर–ध्यान और जप साथही करने में जो तुम्हारी शङ्का है सो ठीक है परन्तु अनुभव करने से उसका रहस्य आपही प्रगट हो जाता है अभ्यास करके अनुभव किये बिना इस विषय का रहस्य जाना नहीं जा सकता। अस्तु उस प्रसंग को सावधान चित्त से श्रवण करो मन और प्राण का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है प्राण रुकने से मन रुक जाता है और मन के रुकने से प्राण रुक जाता है परन्तु मन स्वाभाविक अति चंचल है वह दीर्घ काल तक नियम पूर्वक अभ्यास किये बिना स्थिर नहीं हो सकता और प्राण की स्थिरता बिना आसन प्राणायाम के किसी प्रकार नहीं हो सकती इससे युक्ति पूर्वक कार्य करना चाहिये।

मन का स्वभाव है कि वह नूतन और सुन्दर वस्तु में तत्काल ही लग जाता है परन्तु वहां ज्बरदस्ती रोके बिना देर तक ठहर नहीं सकता इससे ध्यान करते समय यदि नाम का सहारा होता है तो उससे ध्यान लगाने में सहायता होती है क्योंकि मन के भागने के नेत्र, बाणी और कर्ण ये तीन द्वार हैं इनसे मन बहुत शीघ्र निकल जाता है इससे नेत्र तो मूर्ति के देखने में लगे और बाणी नाम स्मरण करनेमें लगी जिससे कान स्वयं निर्बल होके स्थिर हो जाते हैं इस लिये ध्यान के साथ नाम का जप अवश्य करते रहना चाहिये। इसी से भगवान ने भी गीता में कहा है—

अ संयतात्मना योगो दुष्प्राप्यइीत मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्यो वाप्तु सुपायतः॥

अर्थ—जिसका मन वश में नहीं है उसके लिये योग का प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है

यह मेरा मत है परन्तु मन को वश किये हुये प्रयत्न शील साधन द्वारा योग प्राप्त कर सकते हैं।

प्रश्न—हे भगवन् मन को वशीभूत करने में अन्य और भी कोई सरल और ध्यानादि में सहायक साधन हो तो कृपया वर्णन करिये मेरी इच्छा आपके वाक्यामृत को पान करके तृप्ति ही नहीं होती।

उत्तर—हे प्रिय ध्यान में सहायक और मन को वश करने के बहुत उपाय हैं जिसको जो सुखकर हो उसको अपने प्रकृति और गुणों के अनुसार उसका अवलबंन करना चाहिये।

प्रथम—वैराग्य और अभ्यास को सप्रमाण और सयुक्तिक विस्तार पूर्वक वर्णन कर आये हैं।

द्वतीय साधन—नियम से रहना।

मन को वश करने में नियम की भी बड़ी आवश्यकता है। सब धार्मिक कार्य्य ठीक समय पर नियमानुसार करना चाहिये।

कभी ८ बजे कभी १० बजे कभी १२ बजे कभी कुछ भी नहीं ऐसे नियम से बहुत हानि होती है एक नियत समय नियत आसन पर करने से मन स्वयं लगने लगता है नियमों का पालन खाने पीने सोने पहिरने और व्यवहार आदि में भी होना चाहिये।

(तृतीय मन की क्रियाओं पर विचार)

मन के प्रत्येक कार्य पर विचार करना चाहिये प्रति दिन रात को सोते समय दिन भर के मनके कार्य्यों पर विचार करना।

यद्यपि मन का सारा उधेड़ बुन स्मरण आना कठिन है तथापि जो जो कार्य याद आवें उन पर विचार कर जो जो संकल्प और कार्य सतोगुणी प्रतीत हों उन पर मन की प्रशंसा करना और जो जो कार्य धर्म विरुद्ध और साधन विरुद्ध हुये हों उन पर मन को धिक्कार देना ऐसे नित्य अभ्यास से मन राजसिक,

तामसिक कार्यों को छोड़के सात्विककार्य करनेलग जायगा और असत्कार्य करने के संस्कार निवृत्त होके सत्कार्य करनेकेसंस्कार जमने लगेंगे जिससे कुछही काल में मन बुरे कार्योंसे बचके भले कार्योंमें लगजायगा फिर जब मन भले कार्य करने वाला हो जाय तब उसे वश करने में सुगमता होगी ॥

जैसे कुसंग में पड़ा हुआ बालक यावत् कुसंग नहीं छोड़ता तावत् उसे कुसंगियों की बुरी सलाह मिलती रहती है इससे उसका वश होना कठिन होता है पर जब कुसंग छूट जाता है तब उसे बुरी सलाह नहीं मिलती दिन रात माता पिता के सदुपदेश मिलते रहते हैं।

इससे वह सुधर के मातापिता की आज्ञा का पालन शीघ्र करता है ऐसे ही यदि विषय चिंतन करने वाले मन को कोई एक साथ ही सर्व विषय रहित करना चाहैं तो वह नहीं कर सकता इससे पहिले मन को बुरे चिंतन से

बचाना चाहिये । जब वह परमात्मा संबंधि शुभ चिंतन करने लगेगा तब उसे वश करने में कोई कठिनाई न होगी ।

(चतुर्थ मन के कहने में नहीं चलना)

जब तक मन वश में नहीं हो जाता तब तक उसे अपना शत्रु जानना चाहिये जैसे शत्रु के प्रत्येक कार्य पर निगरानी रखनी पड़ती है वैसे ही मन के प्रत्येक कार्य को सावधानी से देखना चाहिये जहां कहीं उलटा सीधा करने लगे, वहीं इसको धिक्कारना और पछाड़ना चाहिये भूल के भी इसकी खातिर कभी न करना चाहिये ।

यद्यपि यह मन बड़ा बलवान है कई बार इससे हारना होगा परन्तु धैर्य्य से अपने कार्य में लगे रहना चाहिये जो हिम्मत नहीं हारता वह एक दिन मन को अवश्य जीत लेता है ।

इसके साथ लड़ने में एक विचित्रता है कि यदि दृढ़ता से लड़ा जाय तो लड़ने वाले का बल बढ़ता है और मन का बल क्रमशः घटने लगता है। इससे इस मन से लड़ने वाला एक दिन अवश्य ही विजयी होता है इससे इसकी हां में हां न मिला के प्रत्येक कार्य्य में खूब सावधानी रखना चाहिये। यह मन बड़ा चतुर है— कभी डरावेगा, कभी फुसलावेगा, कभी लालच देगा, बड़े बड़े रंग दिखावेगा परन्तु कभी इसके धोके में न आना चाहिये और भूल में भी इसका विश्वास न करना चाहिये ऐसा करने से इसकी हिम्मत टूट जायगी लड़ने और धोका देने की आदत छूट जायगी अन्त में वह सीधा सादा आज्ञा पालन करने वाला सेवक बन जायगा।

मन लोभी मन लालची, मन चंचल मन और।
मन के मत चलिये नहीं, पलक पलक मन और॥

(पंचम—मन को सत् और शुभ कार्य में लगाना)

मन कभी खाली नहीं रह सकता कुछ न कुछ काम इसे मिलना ही चाहिये अतः इसे सदा काम में लगाये रहना खाली रहने से ही इसे बुरी बातें सूझती हैं। इससे जब तक नींद न आवे तब तक चुने हुये सुन्दर मांगलिक कार्य्यों में इसे लगाये रखना क्योंकि जाग्रत समय के सत्कार्यों के चित्र ही स्वप्न में दिखाई देंगे।

(षष्ठ—मन को भगवान में लगाना)

श्री भगवान् ने कहा है—

यतो २ निश्चरति मनश्चंचल म स्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

अर्थ—यह चंचल और अस्थिर मन जहां जहां दौड़ के जाय वहां वहां से हटा के बार-म्बार इसे परमात्मा में ही लगाना चाहिये।

मन को वश करने का उपाय प्रारम्भ करने पर वह इतना ज़ोर दिखाता है, अपनी चंचलता और शक्ति सत्ता से ऐसा पछाड़ दिखाता है कि नया साधक घबरा जाता है उसके हृदय में निराशा सी छाय जाती है परन्तु ऐसी अवस्था में धैर्य रखना चाहिये। मन का तो ऐसा स्वभाव ही है यदि हमें विजय पाना है तो घबराने से थोड़े ही काम चलेगा सदा सचेत रह के काम करना आज न हुआ तो क्या कभी न कभी तो वश में होगा ही इससे भगवान ने कहा है।

शनैः शनै रुपमेद्‌वुध्या धृति गृहीतया।
आत्म संस्थं मनःत्वान किंचिदपि चिंतयत्॥

अर्थ—धीरे २ मन को अभ्यास करते हुये उपराम करे और धैर्य्य युक्त बुद्धि से परमात्मा में स्थिर करके अन्य किसी विचार को मन में न आने दे।

बड़े धैर्य की आवश्यकता है घबराने, ऊबने, निराश होने से काम न चलेगा। झाड़ू से घर साफ़ कर लेने पर भी जैसे धूल जमी हुई सी देख पड़ती है वैसे ही मन को संस्कारों से रहित करते समय यदि मन और अधिक अस्थिर दीख तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं परंच इससे डर के झाड़ू लगाना बन्द नहीं करना चाहिये। इस प्रकार की दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेना चाहिये कि बृथा चिंतन और मिथ्या संकल्पों का मन में नहीं आने देंगे। बड़ी चेष्टा और दृढ़ता रखने पर भी मन साधक की चेष्टाओं को ब्यर्थ कर देता है।

साधक तो समझता है कि मैं ध्यान कर रहा हूँ पर मन देवता संकल्प विकल्पों की पूजा में लग जाते हैं जब साधक मन की ओर देखता है तब उसे आश्चर्य होता है कि यह क्या हुआ इतने नये नये संकल्प जिनकी

भावना भी नहीं की गई थीं कहाँ से आगये कारण यह है कि साधक जब मन को निर्विकल्प करना चाहता है तब संसार के नित्य अभ्यस्त विषयों से मन को फुरसत मिल जाता है और उधर परमात्मा में लगने का उसे पूरा अभ्यास नहीं होता इससे अवकाश पाते ही उन पुराने दृश्यों को जो संस्कार रूप से उस पर अंकित हो रहे हैं क्षण २ में एक के बाद एक उलटने लग जाता है इसी से ध्यान समय ऐसे संकल्प उठते हुये प्रतीत होते हैं जो सांसारिक कार्य करते समय याद भी नहीं आते थे। मन की प्रबलता देख साधक स्तंभित सा रह जाता है पर कोई चिन्ता नहीं। जब अभ्यास का बल बढ़ेगा तब उसे संसार से फुरसत मिलते ही शीघ्र ही परमात्मा में लग जायगा अभ्यास दृढ़ होने पर संसार से फुरसत मिलते ही तुरन्त परमात्मा में लग जायगा और अभ्यास दृढ़

होने पर परमात्मा के ध्यान से हटाने पर भी न हटेगा क्योंकि मन चाहता है सुख ! जब तक मन को विषयों में सुख दीखता है तब तक विषयों में रमता है जब अभ्यास से विषयों में दुःख और परमात्मा में सुख प्रतीत होने लगता है तब स्वयं विषयों को छोड़ के परमात्मा की ओर दौड़ता है इससे यावत् ऐसा न हो तावत् निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिये। मन अन्यत्र भागा है यह प्रतीत होते ही तत्काल उसे एक चोर की नाईं पकड़ के उसी अभ्यास में लगाना चाहिये।

दूसरा उपाय यह है कि अभ्यास दृढ़ होने पर जहाँ जाय तहाँ परमात्मा की भावना करनी चाहिये।

प्रश्न—जप और ध्यान समय नाभि और नासाग्र दृष्टि स्थापन करना परन्तु नित्य नियम पूर्वक पद्मासन या सुखासन से बैठ के

नाभि या नासाग्र दृष्टि जमा के यावत् पलक न पड़े तावत् एकाग्रता पूर्वक देखते रहना पहिले कुछकाल इसका अभ्यास कर के पीछे जप या ध्यान के साथ उपयोग करना चाहिये ।

अष्टम—ध्यान वा मानस पूजा—सब जगह भगवान के नाम को लिखा हुआ समझ के बार २ उस नाम के ध्यान में मन को लगाना अथवा अपने प्रिय इष्ट देव की मूर्ति का ध्यान कर के नित्य मानस पूजन करना । पहिले भगवान के मूर्ति के एक २ अवयव का ध्यान अलग २ ध्यान कर फिर दृढ़ता से सारी मूर्ति के ध्यान का अभ्यास करना चाहिये उसी में मन को स्थिर कर मूर्ति के ध्यान में तन्मय हो जाना चाहिये कि संसार का भान ही न रहे फिर मानसिक कल्पना से मानस पूजन करना प्रेम पूर्वक की हुई नियमित भगवदुपासना से मनको निश्चल

करने में बड़ी सहायता मिल सकती है।

नवम उपाय——मैत्री-करुण-मुदित-उपेक्षा का व्यवहार करने मे भी मन वश करने में बड़ी सहायता मिलती है। यही बात महर्षि पातंजलि ने कही है। मैत्री करुण मुदितो पेक्षाणां सुख दुःख पुराया पुराय विषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम्।

अर्थ—सुखी मनुष्यों से प्रेम दुखियों के प्रति दया,पुरायात्माओं के प्रति प्रसन्नता और पापियों के प्रति उपेक्षा अर्थात् उदासीनता की भावना से चित्त प्रसन्न होता है।

जगत् के सब जीवों से प्रेम करने से चित्त का ईर्षा रूप मल निवृत्त होता है डाह की आग बुझ जाती है संसार में लोग अपने को और अपने संबंधी जनों को देख के प्रसन्न होते हैं क्योंकि वे उन लोगों को अपने प्राणों के समान प्रिय समझते हैं। यदि यही प्रिय भाव

सारे संसार के सुखियों के प्रति अर्पित कर दिया जाय तो कितने आनन्द का कारण हो। दूसरे को सुखी देख कर जलन पैदा करने वाली वृत्ति का नाश हो जाय।

दुखियों के प्रति दया करने से पर अपकार रूप चित्त का मल नष्ट हो जाता है। मनुष्य अपने कष्टों को दूर करने के लिये किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं समझता भविष्य में कष्ट होने की संभावना होते ही पहिले से उसे निवारण करने की चेष्टा करने लगता है। यदि ऐसा ही भाव जगत के सारे दुखी जीवों के साथ हो तो अनेक लोगों के दुःख दूर हो सकते हैं दुख पीड़ित जनों के दुःख दूर करने के लिये अपना सर्वस्व निछावर कर देने की प्रबल भावना से मन सदा ही प्रफुल्लित रह सकता है।

धार्मिकों को देख हर्षित होने से दोषारोप नामक मन असूया मल नष्ट होता है साथ ही धार्मिक पुरुषों की भाँति चित्त में धार्मिक बृत्ति जागृत हो उठती है असूया के नाश से चित्त शांत होता है।

पापियों के प्रति उपेक्षा करने से चित्त का क्रोध रूप मल नष्ट होता है। पापों का चिंतन न होने से उनके संस्कार अन्तःकरण पर नहीं पड़ते किसी से भी घृणा नहीं होती इससे चित्त शान्त रहता है। इस प्रकार चारों भावों का अनुशीलन करने से चित्त की राजस-तामस बृत्तियाँ नष्ट होके सात्विक बृत्ति का उदय होता है और उससे चित्त प्रसन्न होके शीघ्र एकाग्रता लाभ करता है।

(दशम—सद्ग्रन्थों का अध्ययन।)

भगवान के परम रहस्य सम्बन्धी परमार्थ ग्रन्थों के पठन पाठन से भी चित्त स्थिर होता

है एकान्त में बैठ के उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता श्रीमद्भागवत, रामायण आदि ग्रन्थों का अर्थ सहित विचार करने से वृत्तियां तदाकार बन जाती हैं इससे मन स्थिर होता है।

एकादश–श्वास के द्वारा नाम का जप एक अत्यंत सुलभ और आशंका रहित उपाय है श्वास के साथ नाम का जप करना जिसका अनुष्ठान सभी कर सकते हैं आने जाने वाले श्वास प्रश्वास की गति पर ध्यान रखके श्वास द्वारा नाम का जप करना यह अभ्यास बैठते चलते फिरते हर समय प्रत्येक अवस्था में हो सकता है इससे श्वास जोर से लेने की भी आवश्यकता नहीं श्वास की साधारण चाल के साथ नाम का जप किया जा सकता है। श्वास के साथ नाम का जप करने से मन रुक रुक के जप होता है उससे कुछ काल में अत्यंत शांति छाय जाती है और आनन्द से छका

हुआ मन समाधिस्थ सा हो जाता है।

(बारहवां उपाय—उत्तमाधिकारियों का है।)

मन के कार्यों को देखते रहना मन को वश करने का बड़ा उत्तम साधन है। मन से अलग होके निरन्तर मन के कार्यों को देखना। जब तक हम मन से मिले हुये हैं तभी तक मन में इतनी चंचलता है परन्तु जब हम मनके दृष्टा बन जाते हैं तब मन की चंचलता मिट जाती है वास्तव में तो हम मन से सर्वथा भिन्न ही हैं। किस समय मन में क्या संकल्प होता है इसका पूरा पता हमें रहता है। हम मन से भिन्न होते हुये भी हम अपने को मन के साथ मिला देते हैं इसी से उसका बल पाकर मन की उद्दंडता बढ़ जाती है। इससे यदि साधक अपने को निरन्तर अलग रख के मन की क्रियाओं का दृष्टा बन के देखने का अभ्यास करे तो बहुत ही शीघ्र संकल्प रहित हो सकता है।

तेरहवां उपाय—भगवन्नाम संकीर्तन मग्न होके उच्च स्वर से नाम और गुण कीर्तन करने से भी मन स्थिर हो जाता है—भगवान चैतन्यदेव ने तो मन को निरुद्ध कर परमात्मा में लगाने का यही परम साधन बनाया है भक्त जब अपने प्रभू का नाम संकीर्तन करते २ गद्गद् कंठ से रोमांचित और अश्रुपूर्ण लोचन होके प्रेमावेश में अपने आप को सर्वथा भूल के केवल प्रेमिक परमात्मा के रूप में तन्मयता प्राप्त कर लेता है—तब भला मन को जीतने में और कौन सी बात बाकी रह जाती है। इससे प्रेम पूर्वक परमात्मा का नाम संकीर्तन करना मन पर बिजय पाने का एक अत्युत्तम साधन है।

॥ पञ्चमोऽध्याय समाप्तः ॥

षष्टम अध्याय

चित्त की परीक्षा का उपाय



प्रश्न—हे भगवन् भगवदाराधन करते हुये हमारा चित्त पूर्व की अपेक्षा उन्नत हो रहा है या अधोमार्गगामी होरहा है इसकी अपने आप कैसे परीक्षा की जाय सो कृपा करके कहिये।

उत्तर—हे प्रिय यह प्रश्न तुम्हारा बड़ा गम्भीर और अति गोपनीय है तथापि साधकों को कल्याणार्थ संत समागम से जो कुछ संतों से प्राप्त हुआ है सो यथा मति कहते हैं साव-धान चित्त से श्रवण करो स्थूल अवस्था से निकल के सूक्ष्म अवस्था में प्रवेश करने को उन्नति कहते हैं इस अवस्था को प्राप्त करने का मन ही प्रधान साधन है।

मन का शांत होके उन्नत मार्ग में चलना ही साधक को उपयोगी है।

यह मन अति चंचल है सदा विषय वासनाओं में ही लगा रहता है यह मन वहुधा बाह्य पदार्थों के चिंतन में लगा रहता है। इसका साधारण प्रबाह संसार की ओर होता है परन्तु उन्नत मार्ग में प्रवेश करने का अंतर्मुख करना पड़ता है अंतर्मुख करने के लिये मन पर सदा दृष्टि रखना पड़ती है और सदा उसकी चाल को देखते रहना होता है तथा उसकी प्रवृत्ति को शीघ्र रोकना पड़ता है।

उस मन की परीक्षा तीन प्रकार से होती है प्रथम परीक्षा ध्यान करते समय मन शान्त समाहित होके स्थित रहे। आध घण्टे की जगह घण्टे भर बैठने की इच्छा हो तो जानना कि अब मन उन्नति अवस्था को प्राप्त हो रहा है और यदि ध्यान के समय मन चंचल, अशांत

रहे और ध्यान के लिये बैठते ही उठने को चाहे तो जानना कि अब मन अवनति अवस्था में पतित हो रहा है।

द्वितीय परीक्षा

द्वितीय परीक्षा स्वप्न द्वारा होती है क्योंकि स्वप्न मन की अवस्था को पूर्ण रीति से दर्शाता है जैसी मन की अवस्था जागृत में होती है उसका पूरा २ चित्र स्वप्न में खिंच के प्रतीत होता है यदि मन सतचिंतन करता हुआ साधु महात्माओं के दर्शन करता हुआ और उनके समीप बैठ के भगवद्‌गुण श्रवण कीर्त्तन करता हुआ देख पड़े तो जानना चाहिये कि अब मन उन्नति अवस्था पर है परन्तु स्वप्न की लीला का समझना बहुत कठिन है स्वप्न को जागते ही तत्काल विचारने से कुछ पता लग जाता है।

तृतीय परीक्षा

तृतीय परीक्षा पदार्थों में तृष्णा की न्यूनता से होती है। यदि मन अनेक प्रकार के भोग

पाके भी शांत और तृष्णा रहित निरपेक्ष रहे विषयों का कभी कोई सूक्ष्म स्फुरण भी न हो कि अमुक वस्तु प्राप्त होजाय तो जानना कि अब मन उन्नति अवस्था पर है और यदि इसके विपरीत सदा बाह्य वस्तु के लिये व्याकुल रहे और इच्छित वस्तु को न पाके सदा चिंतित रहे सदा बाह्य वस्तुओं की लालसा में डूबा रहे तथा छोटी २ वस्तु के लिये व्याकुल रहे। तब जानना कि अभी मन अवनति अवस्था में ही है।

अभ्यास ही सफलता की कुंजी है अभ्यास और उद्योग करने से अवश्य लाभ होता है। ये सब महानुभावों का अनुभव है जो परिश्रम करता है वह अवश्य सुख प्राप्त करता है।

(तीनों परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने का उपाय)

प्रश्न–हे भगवन इन तीनों परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने का भी कोई उपाय है।

उत्तर—अवश्यमेव सिद्ध महात्माओं ने अभ्यास करके उन उपायों को ढूँढ़ के सर्वजन हितार्थ वर्णन किया है उसे हम संक्षेप से वर्णन करते हैं सावधान चित्त से श्रवण करो।

(ध्यान की परीक्षा में सफलता का उपाय)

प्रथम ध्यान की परीक्षा में सफल होने के लिये मंत्र के शब्द और अर्थ के ज्ञान में मन को लगावे किसी नाम मंत्र या गुरु मंत्र का जप करते हुये उस शब्द में ही मन को जोड़े जिसमें मन उस मंत्र के शब्द को छोड़ के अन्यत्र न जाय जब कुछ काल ऐसे करते २ अभ्यास परिपक्व हो जाय अर्थात् शब्द के बिना मन दूसरी ओर न जा सके। तब उस मंत्र के अर्थ सत् चित आनन्द में मन को लगावे वहाँ भी जब अच्छी तरह दृढ़ हो जाय तब इष्ट मूर्ति का ध्यान जप के साथ करे ऐसे करते २ जब इष्ट मूर्ति में एकाकार हो जाय

तब आगे गुरू की आज्ञानुसार कार्य करे आगे गुरु गम्य है लिखने की आज्ञा नहीं वह सद्गुरु स्वयं शिष्य को अधिकारी जान के उपदेश करेंगे क्योंकि महादेव जी ने शिव संहिता में पार्वती से कहा है।

भवेद्वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्यातु प्रकाशिता।

अर्थ—रहस्य विद्या गुप्त रहने से ही पूर्ण फल करती है और प्रकट प्रकाशित होने से निर्वीर्य होकर बल हीन हो जाती है।

(स्वप्न परीक्षा में सफलता का उपाय)

द्वितीय—स्वप्न परीक्षा में सफलता प्राप्त करने के लिये निद्रा आने से पूर्व अपने इष्ट वा गुरु का ऐसा ध्यान करे कि मानो मैं उनके चरणों पास बैठा हुआ जप कर रहा हूँ उसमें ध्यान पूरा जम जाने से उत्तम स्वप्न आवेंगे कुसंस्कार जन्य स्वप्न कभी नहीं आवेंगे।

वाह्य विषय भोगों की तृष्णा निवृत्ति का उपाय

तृतीय परीक्षा-वाह्य विषय भोगों की तृष्णा से मुक्त होने के लिये ऐसा विचार सदा करना चाहिये। कि यह संसार अनित्य और क्षण भंगुर है इसके सब पदार्थ भी वैसे ही अनित्य क्षण भंगुर हैं इनमें सुख नहीं किन्तु सुख तो अपने आत्मा में है इसी से अनेक राजा इससे संसार में नाना प्रकार के भोगों को छोड़ के त्यागी होगये उन्होंने आत्मानुसंधान में तत्पर होके परमानन्द लाभ किया ऐसे संसार को दुःख के हेतु जान के आनंदस्वरूप आत्मा के जानने के अर्थ अभ्यास करने से तीसरी परीक्षा सिद्ध हो सकती है।

षष्टमोध्याय समाप्तः।

सप्तम अध्याय ।

किसी सद्भाव को सदा मन में स्थित रखने का उपाय ।

प्रश्न—हे भगवन् किसी सद्भाव को सदैव मनमें बना रखने का भी कोई उपाय है जैसे ध्यान के समय जो प्रेम उत्पन्न होता है वैसा प्रेम सदा नहीं रहता किन्तु राग द्वेष क्रोध लोभादि आ ही जाते हैं हे प्रभो मैं बारम्बार जो उल्टे सीधे प्रश्न मन में आते हैं सो पूछ बैठता हूँ यह मेरी ढिठाई क्षमा करना यह भी आपकी कृपा का फल है क्योंकि जो उचित अनुचित शंका करता हूँ उसका उत्तर कृपा पूर्वक बड़ी सरलता से आप समझा के कहते हैं इससे मेरा धैर्य्य बारं-बार पूछने में बढ़ता ही जाता है । इससे हे दयालो मेरे अपराध को क्षमा करना ।

उत्तर—हे प्रिय यह प्रश्न तुम्हारा बड़े महत्व का है इससे साधकों को महान् सहायता होगी यह तुम्हारा प्रश्न अति गूढ़ और परम रहस्य-मय है तथापि महात्माओं ने अपने अनुभव से लोकोपकारार्थ प्रकट किया है सो तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं। समाहित और अकाग्र चित्त से श्रवण करो इस कार्य की सफलता के लिये महात्माओं ने सात अवसर बताये हैं यदि इन अवसरों में एकाग्रचित्त होके किसी भावना को दृढ़ता से धारण करेगा तो ईश्वर कृपा से वह भाव उसके मनमें दृढ़ हो जायगा इसमें किंचित संदेह नहीं अनुभूत है।

❀ प्रथम अवसर ❀

१—प्रथम अवसर निद्रा खुलते ही आंखें मल के गुरू और इष्टदेव का स्मरण कर आसन बांध मेरुदंड को सीधा कर बैठ जाय और तीव्र इच्छा से जिस सद्भाव को

मन में धारण करे उसके लिये व्याकुल होके उस भाव की तीव्र इच्छा करके मन को उसी में तदाकार करदे और यह इच्छा करे कि अमुक सद्भाव हृदय में सदा स्थित रहे तो ईश्वर कृपा से सारे दिन वही भाव मन में स्थित रहेगा यदि पूर्ण स्वभाववश कोई कुभाव उत्पन्न भी हो तथापि सद्भाव के अन्तःकरण में स्थित रहने से वह कुभाव टकरा के लौट जायगा और कुछ प्रभाव न डाल सकेगा।

❀ द्वितीय अवसर ❀

द्वितीय अवसर ध्यान का है। जब ध्यान पूर्ण जप जाप और चित्त ध्यान में निमग्न हो जाय अथवा ज्योति प्रकाशित हो वा ऐसा प्रतीत हो कि सारे जगत में एक जीवन सत्ता व्याप्त हो रही है उस समय साधक जिस भाव को अपने मन में सदा स्थिर रखा चाहे उसके लिये तीव्र इच्छा से ईश्वर से प्रार्थना करे तो

ध्यान के समय मन अपनी कठोरता को त्याग के द्रवीभूत होता है। इस कारण उस समय किसी सद्भाव को मन में भावना द्वारा अंकित कर दे तो सदा के लिये वह भाव मनमें स्थित हो जाता है सद्भाव की स्थिति के लिये ध्यान ही परम उपयोगी समय है।

❀ तृतीय अवसर ❀

तृतीय अवसर भोजन पाते समय का है भोजन पाते समय यदि किसी निमित्त से क्रोध वा ईर्षा द्वेष का भाव मन में उत्पन्न हो तो सारे दिन वही ईर्षा द्वेष का भाव मन में बार बार उठता रहेगा यही सबसे अनुभव की बात है इससे यदि भोजन पाते समय एकाग्र चित्त से मौन होके प्रत्येक ग्रास के साथ ईश्वर का नाम लेते हुये और ईश्वर को धन्यवाद देते हुये किसी सद्भाव को मन में धारण कर भोजन

पाया जाय तो अवश्य वह सद्भाव ईश्वर कृपा से सारे दिन मन में बना रहेगा।

इसी से हमारे भारतवर्ष में प्राचीन रीति चली आती है कि भोजन पाते समय मौन रहना चाहिये। इससे पूर्वोक्त भावना में स्थित होके भोजन पाने से उसका रस उसी भाव के सदृश आकाश मंडल से वैसे ही भावों को खींचेगा।

(इस विषय को हमने सङ्कल्प सिद्धि नामक पुस्तक में विस्तार से वर्णन किया है इस लिये ये वहां देखना चाहिए) भोजन का समय भी अति पुण्य समय है उस समय जो सद्भाव मनमें धारण किया जायगा वही सारे दिन बना रहेगा और शरीर की सारी शक्ति उसी ओर खिंचेगी। इससे साधक को भोजन समय व्यर्थ की गपशप वा क्रोध, ईर्षा द्वेषादि में व्यतीत नहीं करना चाहिये। इससे शरीर में विपरीत परिणाम होता है।

जो साधक सदा प्रसन्न रहना चाहते हैं उनको भोजन समय अति प्रसन्नता पूर्वक भोजन करना चाहिये उससे सारा दिन प्रसन्नता पूर्वक व्यतीत होगा अनुभव करके देखो। ये तो कोई कठिन बात नहीं है।

❀ चतुर्थ अवसर ❀

चतुर्थ अवसर निद्रा आने से पूर्व है जब बिछौने पर लेटे और निद्रा आने लगे तो साव-धान होके इच्छित सद्भाव को धारण कर तीव्र इच्छा करे। कि अमुक सद्भाव निद्रा में बना रहे ऐसी भावना कर निद्रा में तल्लीन होगा तो वह सद्भाव मन में स्थित हो जायगा जिससे उस सद्भाव में बल आके अपने सदृश अन्य सद्भावों को आकाश से खींच के मन में स्थित करेगा तब पूर्व का सद्भाव अति दृढ़ और स्थिर होजायगा और यदि रात्रि में स्वप्न भी आवेगा तो परमार्थ विषयक ही आवेगा

कभी २ महापुरुषों के दर्शन होंगे ज्ञान का लाभ होगा। अनेक कठिन प्रश्नों का उत्तर भी मिलेगा क्योंकि निद्रा के समय सारी इंद्रियां मन सहित शान्त होनेसे आत्माका यथार्थ प्रकाश भी हो सक्ता है। निद्रा आने से पूर्व जो भाव मन में डाला जायगा उसी में मन सारी रात लगा रहेगा और उसी के अनुसार सूक्ष्म शरीर कार्य करेगा इससे निद्रा का समय भी सद्भाव स्थिती के लिये अति उपयोगी है।

❀ अन्य तीन अवसर तीनों सन्धियों के हैं ❀

पूर्वोक्त चार अवसरों के अतिरिक्त तीन अवसर तीन संधियों के हैं। १—प्रातः संधी, २—मध्याह्न संधी और ३—सायं संधी इन तीनो अवसरों में भी यदि कोई तीव्र इच्छा से प्रेम पूर्वक किसी सद्भाव को मन में धारण करेगा तो ईश्वर कृपा से उस सद्भाव की स्थिति का अवश्य लाभ होगा।

ये भी उत्तम समय माने गये हैं इनमें भी ध्यान, नाम, स्मरण, दान, पुण्य करना अति शीघ्र लाभकारी होता है क्योंकि उस समय प्रकृति अपनी समता रूप में होती है और उस समय तीनों गुणों की हलचल बन्द हो जाती है इससे उस समय जो साधक जिस सद्भाव को मन में धारण करेगा वह सद्भाव दिन भर मन में फुरेगा इसी से इन संधि समयों में संध्या बंदनादि करने की शास्त्रों में आज्ञा पाई जाती है क्योंकि मनुष्य प्रकृति पुरुष का अंश है। इससे यदि उसके अनुकूल कार्य करेगा तो उन्नति को प्राप्त होगा नहीं तो पतित होके दुःख पायेगा इससे इन संधियों में अपना स्व वर्णाश्रम धर्मानुकूल आचरण करने से मनुष्य का चित्त और उसकी शारीरिक शक्तियां उसी अनुकूलता में प्रवर्त्त होंगी किन्तु उसके विरुद्ध कभी न चलेगी उससे मनुष्य दिनो दिन उन्नति

करता जायगा और यथार्थ नित्य सुख का भागी होगा इस लिये जितना कार्य इन संधियों में किया जायगा जिससे प्रकृति पुरुष का मेल हो। क्योंकि यह नियम है कि जो वस्तु जिससे उत्पन्न हुई है उससे मिली रहे तो बढ़ती है नहीं तो सूख जाती है जैसे वृक्ष भूमि से उत्पन्न होता है। वह यदि भूमि से प्रथक किया जाय तो सूख जायगा तैसे ही मनुष्य प्रकृति पुरुष से उत्पन्न हुआ है सो उसी से जुड़ा रहे तो कल्याण प्राप्त करेगा और उन्नत होगा। नहीं तो अवनत होके दुःख में पड़ेगा इससे इन तीन संधियों को व्यर्थ संसारी कार्यों में नहीं गवाना चाहिये किन्तु उनमें सद्भावों को जगा के मनमें स्थित करना चाहिये क्योंकि यह बहुत ही अमूल्य समय है।

॥ सप्तम अध्याय समाप्तः ॥

अष्टम अध्याय

हे भगवन् सर्व कार्य सिद्धी के अर्थ आपने संकेत देने का उपाय बताया सो अति समीचीन और अनुभूत है परन्तु सीधे सादे चंचल चित्त और स्थूल बुद्धि वालों को इस संकेत विषय पर शीघ्र विश्वास होना कठिन है इससे और भी कोई सरल और सप्रमाण उपाय हो सो कृपया वर्णन करिये मैं आपके वाक्यामृत को पान करता हुआ किसी समय तृप्त नहीं होता।

उत्तर—हे प्रिय यह तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया इससे साधकों का बड़ा उपकार होगा इसमें अन्य दो उपाय सत्पुरुषों से अनुभूत और सप्रमाण और भी हैं यदि श्रद्धा विश्वास पूर्वक उनका अनुसंधान किया जायगा तो अवश्यमेव सकाम तथा निष्काम कार्यों की सिद्धी होगी।

प्रथम उपाय गायत्री जप हवन सहित शुद्ध स्पष्ट उच्चारण पूर्वक श्रद्धायुक्त किया जायगा तो अवश्य सकाम निष्काम कार्य्य की सिद्धी होगी इसमें अणुमात्र संशय नहीं ये बात सत्य २ पुनः सत्य है और बहुत लोगों की अनुभूत है और इसमें सहस्रावधि प्रमाण हैं और स्थूल रीति से गायत्री के अर्थ से सूर्य्य का मंत्र कहाता है इससे इस मंत्र का आराधन करने से लक्ष्मी प्राप्ती भी होती है जिसकी इच्छा हो सो अनुभव करके देखे सहस्रों बार मेरा अनुभव कितने ही दरिद्र ब्राह्मणों पर है कितने ही दरिद्र पीड़ित ब्राह्मणों को मैंने नित्य एक सहस्र गायत्री जप का आदेश दिया उनको एक वर्ष बाद धन संपन्नता देखी—जो खाने को भी कठिनता से निर्बाह होता था सो अति सरलता से होने लगा गायत्री जप

अग्निहोत्र वा सादे गायत्री मंत्र से हवन पूर्वक किया जाय तो और अधिक शीघ्र फल होता है।

परन्तु यद्यपि वेदाध्ययन का अधिकार द्विजाति मात्र को है अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य पर्यंत वेदाध्ययन का अधिकार है। परन्तु इस घोर कलिकाल में यज्ञोपवीत संस्कार लुप्त-प्राय हो गये हैं इससे जिनके तीन पीढ़ी तक यज्ञोपवीत संस्कार विधिवत नहीं हुये हैं वे अपनी हित की इच्छा से गायत्री जप करने का साहस न करें अन्यथा लाभ के बदले महान हानि और अधर्म प्राप्ति होगी इस में किंचित संदेह नहीं करना। इससे ऐसे सज्जनों को अन्य पुराणोक्त या तंत्रोक्त मंत्र का जप श्रद्धा विश्वास पूर्वक सूर्योदय के पूर्व वा सूर्योदयानंतर हवन पूर्वक करने से पूर्वोक्त फल अवश्य होगा। यदि ये भी न हो सके तो

इससे भी सरल उपाय सप्रमाण ईश्वर प्रार्थना है और यह भी अनुभूत है। तथा पाश्चात्य लोगों ने भली प्रकार अनुभव करके देखा है और मुक्त कंठ से बार २ प्रशंसा की है।

वेदों में भी प्रार्थना के बहुत मंत्र मिलते हैं जैसे——ऋग्वेद–

पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शत मदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।

अर्थ–हम सौ वर्ष तक देखें, सौ वर्ष तक जीवित रहें, कानों से १०० वर्ष तक सुनें, १०० वर्ष तक शुद्ध स्पष्ट भाषण करें, १०० वर्ष तक किसी से दीन न होवें। भूयः फिर सौ वर्ष तक ऐसे ही रहें।

यजुर्वेद–तन्मे मनः शिव संकल्प मस्तु।

हे प्रभू हमारा मन शुभ संकल्प करने वाला होवे अर्थात् हमारे मन में शुभ संकल्प आवें।

प्राणं मे पाहि अपानं मे पाहि।

हे प्रभू हमारे प्राण की रक्षा करो अपान की रक्षा करो।

इसी प्रकार पुराणों में भी प्रार्थना विषयक बहुत प्रमाण मिलते हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रार्थना करने से भी सकाम निष्काम कार्य सिद्धी अवश्य होती है।

उसकी विधि यह है कि एकान्त स्थान में पृथ्वी पर शिर रख के अत्यन्त नम्र और कातर भाव से ईश्वर से प्रार्थना करे परन्तु चित्त में अन्य भावना न उठने दे श्रद्धा विश्वास पूर्वक एकाग्र चित्त से अति दीन भाव से प्रार्थना शब्दों को बारंबार दोहरावे फिर प्रार्थना के उत्तर की प्रतीक्षा करे और उस समय अपने मन को संकल्प रहित बिलकुल शून्य कर दे तो अवश्य शान्त चित्त में प्रार्थना का उत्तर मिलेगा।

यदि पहिले दिन उत्तर न मिले तो दूसरे दिन तीसरे दिन भी वैसा ही करता रहे यावत् संतोषजनक उत्तर न मिले। उत्तर मिलना परम स्वाभाविक है। इससे उत्तर अवश्यँ मिलेगा।

उस समय एक प्रकार की समाधि अवस्था हो जाती है महर्षि पातांजलि ने इसी को स प्रज्ञात समाधि कहा है शनैः शनैः अभ्यास द्वारा वह अवस्था जो प्रार्थना समय होती है बैठ के भी हो सकती है।

प्रार्थना का उत्तर आस्तिक नास्तिक दोनों को मिलता है क्योंकि वह वैज्ञानिक प्रणाली है प्राण और पवित्रता के दाता प्रभु सर्वत्र ही विद्यमान हैं सच्चे हृदय से आराधन करने से परमात्मा प्रसन्न होते हैं और साधक की रक्षा करते हैं।

प्रार्थना किसी समय बन्द न होनी चाहिये किन्तु मन सदा प्रत्येक सांसारिक काम करते

हुये भी ईश्वर की ओर लगा रहना चाहिये ऐसे बर्ताव करने से एक बड़ा लाभ यह होता है कि अच्छे विचारों से आशा और सुख का प्रादुर्भाव हमारे चित्त में ईश्वर की ओर से होने लगता है जैसे मन्दिर में पुकार की गूँज दुगनी होके हमारे पास लौट आती है इसी प्रकार प्रार्थना से हमारे आशा और सुख के भाव उत्तरोत्तर बढ़ते ही जाते हैं। प्रार्थना के निरंतर प्रयोग द्वारा मनुष्य में एक ऐसा आकर्षण उत्पन्न हो जाता है कि अन्य मनुष्य उसकी ओर अपने आप खिंचने लगते हैं और उसके बशीभूत हो जाते हैं इससे प्रार्थना में दृढ़ विश्वासी मनुष्य जो कार्य करेगा उसमें अन्य मनुष्यों की अपेक्षा शीघ्र सफलता प्राप्त कर लेगा परन्तु इसका सदा ध्यान रखना चाहिये कि जो मनुष्य हमारी ओर आकर्षित हो उससे अपना कोई स्वार्थ सिद्ध करने का विचार मन में न

आने पावे क्योंकि स्वार्थ साधन का विचार आते ही हमारा वह आकर्षण नष्ट होना प्रारम्भ हो जायगा और हम ढोंगी सिद्ध होंगे।

मनुष्य यदि प्रत्येक कार्य्य करते समय परमात्मा का स्मरण करता रहे तो उसे अपने काम में सफलता भी पूर्ण होगी क्योंकि ईश्वर की ओर ध्यान रहने से चित्त में सदा आत्म विश्वास बना रहता है और यह तो सभी जानते हैं कि आत्म विश्वास ही प्रत्येक कार्य्य में हमारी सफलता का प्रधान कारण है। परमात्मा का सदा चिन्तन करने से अरोचक कार्य्य भी परम रोचक जान पड़ने लगते हैं और हमारा जीवन आनन्द रससे सदा भरा रहता है इससे प्रत्येक कार्य्य करते समय परमात्माका निरंतर श्रद्धा पूर्वक स्मरण चिंतन करते रहना चाहिये यही सच्ची प्रार्थना है। निष्काम प्रार्थना मे शान्ति मिलती है आत्मबल बढ़ता है और आत्म

ज्ञान प्राप्त होता है। आत्म ज्ञान ही मनुष्य जन्म का सर्वोच्च फल है परन्तु मनुष्य मोह वश सकाम प्रार्थना करता है अन्त में उससे पश्चाताप होता है।

शान्ति कैसे प्राप्त होती है यह देखना हो तो प्रातः सायं एकान्त स्थान में हाथ जोड़ के परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करो कि हे नाथ आपने मुझे सब कुछ दिया है अब कृपा करके एक बूँद शान्ति दीजिये। तो दो चार दस दिन में अवश्य उसकी प्राप्ति होगी उस समय तुम्हारे पास चाहे खाने को चने और वस्त्रों में लंगोटी मात्र हो बृक्ष की छायामें पड़े हो परन्तु उस समय वह सुख तुम्हें प्राप्त होगा जो बड़े २ गद्दों पर दास दासियों सहित राजा और साहूकारों को भी न प्राप्त होगा।

आर्य ऋषियों ने इसका वास्तविक तत्व यह बताया है कि जो जिसके पास होता है वह उसी से मिलता है। प्रकृति स्वयं परिवर्तन-शील है अशान्ति है उससे शान्ति मिलना असम्भव है और परमात्मा शान्ति के समुद्र हैं उनके स्मरणमात्र से शांति प्राप्त होती है। अतः शांती की इच्छा वाले को सदैव भगवत शरण लेना चाहिये।

ईश्वरा राधन के लिये प्रातः ब्राह्ममुहूर्त ही सर्व श्रेष्ट है उस समय एकाग्र मन से प्रेम पूर्वकईश्वरप्रार्थना करना मानो ईश्वर हमारेसन्मुख विराजमान है और वे हमारी प्रार्थना सुन रहे हैं ऐसा चित्तमें दृढ़ विश्वास और निश्चय करके जिन बचनों में मधुरता और नम्रता भरी हो और जिनमें अति प्रेम झलकता हो ऐसे बचनों से प्रार्थना करे जिससे प्रार्थना करते हुवे रोमांच हो के नेत्रों से प्रेमाश्रुधारा बहने लगे

ऐसे प्रेम और श्रद्धा से की हुई प्रार्थना को परमात्मा अवश्य सुनेंगे।

इसी विषय पर दो आख्यान अनुभूत हैं उन्हें तुम्हारे विश्वासार्थ वर्णन करते हैं ध्यान देके सुनो यदि तुम किसी घोर बन में या किसी विकराल मांसाहारी जीव के सन्मुख पहुँच जावो अथवा कोई घोर आपत्ति तुम पर आजाय तो तुम हृदय में ईश्वर से प्रार्थना करो अपने इष्ट देव की मूर्त्ति को नेत्र मूँद के विश्वास पूर्वक ध्यान करो तो निश्चय ही ईश्वर की अद्भुत शक्ति तुम्हारी अवश्य रक्षा करेगी ऐसी रक्षा सशस्त्र रक्षक से भी न होगी परन्तु मन में विश्वास होना चाहिये।

भगवान ने भी गीता में कहा है—

अनन्याश्चिंतयंतो मां येजनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योग क्षेम वहाम्यहम॥

अर्थ–जो हमको अनन्य भाव से उपासना करते हैं ऐसे नित्य अभियुक्त पुरुषों के योग क्षेम को हम ही पहुँचाते हैं अर्थात् अप्राप्त वस्तु को प्राप्त और प्राप्त वस्तु की रक्षा हम ही करते हैं। पं० सोहनलाल जी शर्मा रेलवे लाइन इन्स्पेक्टर अपना अनुभव वर्णन करते हैं–कि मेरा कई बार का अनुभव है कि जब २ मुझ पर विपत्ति पड़ी और मैंने विश्वास पूर्वक प्रार्थना की और नेत्र मूँद के इष्ट देव का ध्यान किया और शिर नवाया कि प्रभू ने मुझे कठिन विपति से मुक्त किया।

एक बार मैं ऊँट पर से अपने घर को आ रहा था मार्ग में यकायक ऊँट रुक गया सामने देखा कि एक बिकराल चीता जीभ निकाले पहाड़ी से नीचे उतर रहा है मैं भयभीत होगया, ऊँट पीछे हटने लगा उस समय निरुपाय होके नेत्र मूँद के ईश्वर स्मरण करने

लगा। मेरी प्रार्थना ईश्वर ने सुन ली वह प्रत्यक्ष काल पीछे मुड़ के जङ्गल में चला गया ऐसे ही एक बार मैं रेलवे लाइन पर काम देखने जा रहा था उसी पगडंडी में एक चीता आते हुवे देखा ज्योंही चीते ने मेरी आहट सुनी वह ठहर गया और ३० गज़ के फासले से खड़ा होगया तब मैंने अपने को काल के गाल में जानके एक सेकंड अपने इष्ट देव से प्रार्थना की चीता १० गज़ आगे बढ़ के ठहर गया तब मैं धीरे २ आगे बढ़ के गाँव की ओर जोर से भागा और एक बार फिर ईश्वर चिंतन किया।

एक बार मैं जंगल में रास्ता भूल गया इधर उधर भटकता हुआ निराश होगया तब मैंने नेत्रों से आंसू बहाते हुये ५ मिनट प्रभू प्रार्थना की थोड़ी देर में देखा कि एक मनुष्य मेरे समीप आरहा है इस प्रकार मुझे कई अनु-

भव हुये अब मुझे पूर्ण विश्वास होगया है कि चाहे गरुड़ को सर्प डस ले परन्तु अब मेरी श्रद्धा हट नहीं सकती।

❀ प्रार्थना की रीति ❀

हे प्रभो हे परम पिता परमात्मा आप सर्व व्यापक हैं सर्व शक्तिमान हैं और मैं आपका अंश हूँ इससे मुझे आप ऐसा बल दें जिससे अपने व्रत में दृढ़ रहूँ और निर्भय होके विचरूँ। हे पिता आपने द्रोपदी की लज्जा रक्खी प्रहलाद को दुःख से बचाया।

श्रद्धा युक्त ऐसी प्रार्थना करने से तुम में अद्भुत शक्ति का संचार होके तुम्हारी कामना पूरी होगी।

॥ अष्टमोध्याय समाप्तः ॥



नवम अध्याय

संसार से तरने का सरल उपाय।

प्रश्न—हे भगवन् चारों वर्णों को इस कलिकाल में संसार से तरने का सरल उपाय क्या है इस घोर कलिकाल में आयु अति अल्प होने से न तो योग साधन हो सकता है, न तप ही बन सकता है न शरीर में तप करने की मनुष्यों में सामर्थ्य ही है जिधर देखो उधर से रोग से पीड़ित ही जनता दिखाई देती है। इससे ऐसा कोई सरल उपाय कहिये जिससे चारों वर्ण और चारों आश्रम अपने २ धर्मानुसार आचरण कर सरलता से उत्तम गति प्राप्त करें।

उत्तर—हे प्रिय यह तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया जिससे सार्वजनिक उपकार होगा अब सावधान मन से श्रवण करो—

सब से सरल संसार से छूटने का उपाय ईश्वर का नाम स्मरण है इसके समान सरल उपाय और कोई नहीं। जिसमें न कोई विधी है न पवित्रता अपवित्रता की आवश्यकता है उठते बैठते चलते फिरते खाते पीते लेटे बैठे सर्व अवस्था में निरंतर ईश्वर का नाम लेना चाहिये।

प्रश्न-हे प्रभू नाम स्मरण कैसे करना चाहिये?

उत्तर- नाम स्मरण चाहे ज़ोर से बाणी से करे चाहे मन ही मन निरंतर करे। इसमें कोई विधि नहीं है परन्तु मन ही मन निरंतर जप अति श्रेयस्कर है। वह कुछ काल वाणी से करते २ आप ही आप मन से होने लगता है। इसमें वाह्य दिखावा न होने से अभिमान नहीं बढ़ता कि हम निरंतर नाम जपते हैं दूसरे मन ही मन जप करने से मानासिक विकारों की अर्थात् काम-क्रोधादि की निबृत्ति शीघ्रता से होती है।

तीसरा लाभ यह है कि मन ही मन नाम स्मरण करने से मन को संसारी विचार करने को समय नहीं मिलता। चौथे इससे कालान्तर में अत्यन्त शान्ति प्राप्त होती है। पाँचवाँ लाभ नाम स्मरण मन ही मन करने से इष्ट देवता के दर्शन होते हैं। भगवान पातांजलि ने कहा है—

स्वाध्यायादिष्ट देवतासं प्रयोगः।

शास्त्रों में जप को भी स्वाध्याय कहा है इससे मानसिक जप से इष्ट देवता के दर्शन होते हैं। इस कारण ५ लाभ होने से धीरे २ मानसिक जप का अभ्यास करना चाहिये। एक गुण इसमें और भी यह है कि हाथ पैर से काम होता जाता है मन से अनायास जप होता जाता है।

प्रश्न-हे भगवन् भगवान के नाम तो अनन्त हैं तो किस नाम का जप विशेष कल्याणकारी और शीघ्र पापों को नाश करने वाला है?

उत्तर—हे प्रिय भगवान के नाम सब पाप नाशक हैं और कल्याणकारी हैं तिनमें से जिस नाम में अपने को अति प्रेम और रुची हो वही जपना चाहिये। जिसमें रुची हो उस नाम को जपने से मन बहुत शीघ्र लगता है तथापि तुमने जो पूछा इससे हमारी छोटी बुद्धी में हरि यह दो अक्षर का नाम अति सरल है और सर्व देवता वाची है और इसके प्रमाण भी बहुत मिलते हैं।

श्री मद्भागवत में कहा है—

श्लोक-म्रियमाणो हरेर्नाम गृहणन् पुत्रोप चारितं।
आजामिलो प्यगाद्धाम किं पुनःश्रद्धया गृणन्॥

अजामिल मरण समय पुत्र का नाम लेने से उत्तम गति को प्राप्त हुआ। फिर जो प्रेम से हरि नाम उच्चारण करेगा उसका तो कहना ही क्या है।

सकृदुच्चरितं ये न हरि रित्यक्षर द्वंय।
वद्धःपरिकरस्ते नमोक्षाय गमनं प्रति॥

स्कन्द पुराण।

हरि नाम के दो अक्षरों को जिसने एक बार भी उच्चारण किया उसने मानो मोक्ष प्राप्ति के अर्थ कमर कस ली।

अन्यत्र भी कहा है—

नारायणां विषयां धानां ममता कुल चेतसां।
एक मेव हरेर्नाम सर्व पाप विनाशनम्॥

विषयाध और ममता से व्याकुल चित्त वाले मनुष्यों को एक मात्र हरिनाम ही सर्व पापों का नाश करने वाला है।

अन्यत्र और भी कहा है।

हरि हरति पापानि दुष्ट चितै रपि स्मृतः।
अछिलापि संस्पृष्टो दहत्येवहि पावकः॥

हरि नाम निदुष्ट चित्तों करकेभी लियाहुआ पापों को हरण करता है जैसे धोके में अग्नि स्पर्श होने से अग्नि जला देती है।

॥ नवमोऽध्यायः समाप्तः ॥

दशम अध्याय

॥ नाम स्मरण ॥

प्रश्न—हे प्रभो ! हे भगवन् शास्त्रों तथा पुराणों में नाम माहात्म्य बहुत सुनने में आता है। यथा—

नाम्नोस्य यावती शक्तिः पाप निर्हरणेहरेः ।
तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः ॥

अर्थ—हरि नाम में पापों के नाश करने कि जितनी शक्ति है उतने पाप ही मनुष्य नहीं कर सकता ।

ब्रह्म रहस्य में शिवजी ने पार्वती से कहा है ।

नियतं राम नाम्नस्तु कीर्तना च्छ्रवणाच्छिवे ।
महतोप्येन सः सत्य मुद्धरे द्राघवो वली ॥
सत्यं ब्रवीमि देवेशि श्रुत्वेद म व धारय ।
नाम संकीर्तनादन्यो मो च कोत्र न विद्यते ॥

अर्थ—हे शिवे निरंतर राम नाम के कीर्त्तन और श्रवण से राघव रामचन्द्र महान पापों से उद्धार करते हैं यह सत्य पुनः सत्य है।

प्रश्न—हे देवेशि हम सत्य कहते हैं इसको सुन के धारण करो नाम संकीर्त्तन से पापों से छुड़ाने वाला दूसरा उपाय नहीं है। इससे ऐसा नाम का माहात्म्य होने पर भी नाम लेने वालों को पूरा फल अर्थात् निष्पापता नहीं होती और ईश्वर परायणता पूर्ण रीत्या नहीं होती इसका कारण क्या है सो कृपा करके सर्वोपकारार्थ वर्णन करिये।

उत्तर—हे प्रिय तुम्हारा कथन बहुत ठीक है इस में किंचित संदेह नहीं यह बात तुमने रहस्य-मत पूछी है इससे सावधान चित्त से श्रवण करो। किसी महात्मा ने कहा है कि—

राम राम सब कोइ कहे दशऋत कहे न कोय।
एक बार दशऋत कहे तो कोटि यज्ञफल होय॥

ऋत शब्द व्याकरण में बिना का बाची है इससे दश ऋत कहे न कोय अर्थात् दश दोष रहित ईश्वर का नाम एक बार ले तो कोटि यज्ञ फल होय।

प्रश्न—हे भगवन् वे दश दोष कौन से हैं सो भी कृपया वर्णन कीजिये।

उत्तर—हे तात पद्म पुराण में नारद सनत्कुमार संवाद में नाम के दश अपराध कहे हैं।

उनसे रहित जिनके वाणी से सदा नामोच्चारण होता है और कान से सदा भगवन्नाम श्रवण करते हैं वे यदि कदाचित वर्ण रहित अशुद्ध भी नामोच्चारण करें तो भी वे उत्तम गति को प्राप्त होते हैं। परन्तु यदि देह द्रव्य लोभ से पाखंड में पतित होके नामोच्चारण करते हैं उनको शीघ्र पूर्ण फल की प्राप्ती नहीं हो सकती। जैसे एक कथा है कि एक जगह रामायण की कथा हो रही थी। कथा समाप्त होने पर

किसी एक अनधिकारी पामर ने पंडित जी से पूछा महाराज आपने जो कथा सुनाइ उसमें राक्षस कौन था क्या राम राक्षस था या रावण राक्षस था ये बात समझ में नहीं आई।

यह बात सुन के पंडित जी ने कहा कि भाई न राम राक्षस थे और न रावण राक्षस थे किन्तु राक्षस तो मैं हूं जो तुम्हारे जैसे मनुष्य के सामने कथा सुनाई। इसका तत्पर्य यह है कि पामर प्राणी नाम महात्य को सुन के भी अपने मन के अनुसार काम करता है अतएव नाम की महिमा का महत्व कम हो जाता है। यही नहीं किन्तु पामर प्राणी के पेट में अन्न जाने से वह अन्न भी रोता है।

विद्या विनय संपन्ने श्रोत्रिये गृहमागते।
क्रीडत्योषधयः सर्वाः यास्यामः परमां गतिम्॥

भ्रष्ट शौच व्रताचारे विप्रे वेद विवर्जिते।
रोदित्यन्नं दीयमानं किं मयादुष्कृतं कृतम्॥

अर्थ—यदि किसी गृहस्थ के घर विद्या विनय संपन्न कोई श्रोत्रिय ब्राह्मण आ जाय तो उस गृह में धरे हुये चावल आदि अन्न प्रसन्न होके सोचते हैं कि आज हम एक उत्तम महात्मा के मुख में जाके उत्तम गति पावेंगे।

किन्तु जब उसी गृहस्थके घर कोई आचार भ्रष्ट व व्रत भ्रष्ट वेद विवर्जित अतिथि आ जाता है तो वही अन्न रोने लगता है कि हाय हमने कौन सा पाप किया है जिससे आज इस पतित के मुख में जाने के कारण हमारी दुर्गति होगी अस्तु इन बातों से यही सिद्ध होता है कि अनधिकारी को सुनाये हुवे मंत्र भी दूषित हो जाते हैं।

श्री सनत्कुमारउवाच—

सर्वापराध कृद्योपि मुच्यते हरि संश्रयः।
हरे रप्य पराधान् हि यः कुर्यात्पद पांसनः॥
नामाश्रयः कदाचित्स्यात्तरत्येव सनामतः।
नाम्नो हि सर्व सुहृदो ह्यपराधात्पतत्यधः॥

❀ श्री नारदउवाच ❀

केते पराधा विप्रेन्द्र नाम्नों भगवतः कृताः।
विनिघ्नंति नणां कत्यं प्राकृतं ह्यानपंति हि ॥

❀ श्री सनत्कुमारउवाच ❀

सतां निंदा नाम्नः प्रथम मपराधं विनतुते।
यतः ख्यातिं जातं कथमुसहते तद्विगरहौ ॥
शिवस्य श्रीविष्णो प्यइह गुणनामादि सकलं।
धियाभिन्नं पश्येत्सखलु हरि नामा हितकरः ॥

गुरोरवज्ञा श्रुति शास्त्र निंदनं।
तथार्थ वादो हरि नाम्नि कल्पते ॥
नाम्नो वला द्यस्यहि पाप बुद्धि-
र्न विद्यते तस्य यमै र्विशुद्धिः ॥
धर्म व्रत त्याग हुतादि सर्वं,
शुभ क्रिया साम्य मपि प्रमादः।
अश्रद्दधाने प्य मुखे प्य शृण्वति,
यश्चोपदेशं स नामा पराधः ॥

श्रुत्वापि नाम महात्म्यंयः प्रीति रहितो धमः।
अहं ममादि परमो नाम्नि सोप्यपराध कृत्॥
अपराध विनिर्मुक्तो नाम्नियानं समाचर।
नाम्नैव तव देवर्षे सर्वं सेत्स्यति नान्यतः॥
ज्ञाते नामा पराधे तु प्रमादेन कथंचन।
सदा संकीर्तयन्नाम तदेक शरणो भवेत्॥
नामापराध युक्तानां नामान्येव हरं त्यघम।
अविश्रांत प्रयुक्तानि नान्येवार्थकराणि च॥
नामैकंवाचियेषां स्मरण पथिगतंश्रोत्र मूलेगतंवा
शुद्धंवाशुद्धवर्णंव्यवहित रहितंते तरंत्येवनित्यं॥
तद्धै देह द्रविण जनतो लोभ पाखंड मध्ये।
निक्षिप्तं स्यान्नफल जनकं शीघ्र मेवात्र विप्र॥

अर्थ—सर्व पापों का करनेवाला भी केवल नाम जप से ही सर्व महान पापोंसे मुक्त होसकता है परन्तु हरि नाम का अपराध करने से पूर्ण फल कदापि नहीं हो सकता।

❀ नारदउवाच ❀

प्रश्न—हे भगवन् नाम के ग्रहण में किस २ अपराध से नरों का पुण्यक्षय होता है और नाम का यथार्थ फल नहीं होता।

❀ सनत्कुमारउवाच ❀

१—सत्पुरुषों की निन्दा, २—सत्यपुरुषों का तिरस्कार, ३—शिव विष्णू में भेद कल्पना अर्थात् न्यूनाधिक्य कल्पना, ४—गुरु निन्दा, ५—वेद निन्दा, ६—शात्र निन्दा, ७—नाम में अर्थवाद कल्पना अर्थात् नाम का माहात्म्य केवल स्तुति मात्र है, ८—नाम के बल से पाप करना अर्थात् हम तो नाम जपते हैं हम को पाप नहीं लग सकता, ९—धर्म,ब्रत, हवनादि सर्व शुभ क्रिया का त्याग कर केवल नाम जपने वाले पुरुषों से उपदेश लेना, १०—नाम महात्म्य सुन के भी प्रीति रहित होके अहंममादि दोषों के परायण होना।

हे नारद यह दश अपराध हैं इन से रहित होके नाम स्मरण में रत हो हे देवर्षे तब केवल नाम के ही प्रभाव से इच्छित वस्तु को प्राप्त कर सकोगे ।

प्रश्न—हे प्रभो दश अपराधों का जो आप ने वर्णन संक्षेप से किया सो मेरी मंद मती में ठीक समझ में नहीं आया क्योंकि यह विषय परम उपयोगी और महा गम्भीर विषय है। इससे कृपा करके स्पष्ट तथा विस्तार से वर्णन करिये।

उत्तर—हे प्रिय तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया वास्तव में यह विषय बहुत गम्भीर है इसको प्रमाण सहित सविस्तार वर्णन करते हैं सावधान चित्त से श्रवण करो ।

प्रथम सतां निन्दा नाम सत्पुरुषों के गुणों को न समझ के उनकी निन्दा करना ।

द्वितीय—शिव विष्णू में भेद बुद्धि करके नाम जप करना ऐसे जप से उलटे अधोगती की

प्राप्ती होती है और दोनों नामों में से किसी नाम के जपन से वह जप व्यर्थ ही होता है। क्योंकि शास्त्रों में कहा है कि–

शिवस्य हृदयं विष्णुः विष्णुश्च हृदये शिवः।
एतयो रंतरं मत्वा रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

अर्थ–शिव का हृदय विष्णू है और विष्णू का हृदय शिव है इससे इन दोनों में अंतर मानने वाला प्राणी रौरव नरक गामी होता है तथा महात्मा भट्ट माहेश्वर जी ने भी कहा है कि-

ये ये भक्त जना निजेष्ट शरणः श्रेष्ठं सदोपासने।१
ते जल्पंति मृषान्य देवत मिदं मन्या महेनो वयं॥२
अस्माकं तु शशांकशेखर पदद्वंद्वैक निष्ठात्मनां।३
सर्वं खल्विदमंबिकेश्वर मयं चित्ते जगद्भासते॥४

अर्थ–जो भक्त जन सदा अपने इष्ट देव की शरण में रह कर तथा उनको उत्तम मान-कर उनकी उपासना करते हैं वे ठीक हैं परन्तु

जो यह कहते हैं कि हमारे उपास्य देव की अपेक्षा अन्य देवता मिथ्या हैं। उनकी यह बात मुझे नहीं जचती क्योंकि मुझे तो सारा ब्रह्मांड अपने उपास्य देव श्री चन्द्रशेषर मय ही देख पड़ता है। फिर मैं किसे मिथ्या कहूं इस कथनसे प्रत्येक भक्तको विचार करना चाहिये।

४ चौथे—अश्रद्धा गुरु, शास्त्र वेद बचने-गुरु वाक्य में अश्रद्धा यह भी बड़ा दोष है इससे गुरू करने के पूर्व ही खुब विचार करने की आवश्यकता है।

मुंडकोपनिषत् में सद्गुरू के दो विशेषण कहे हैं। ॥ श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥

इन दो गुणों को देखे बिना किसी को भी गुरू बनाने का साहस नहीं करना चाहिये। ऐसा करने से पीछे पछताना पड़ता है और अश्रद्धा उत्पन्न होती है। सद्गुरू वही है जो वेद वेदांग पारंगत हो, शाम दमादि गुण युक्त

हो क्रोधादि रहित हो। ऐसे सद्गुरू के वचन में अश्रद्धा उत्पन्न होने से उनके उपदिष्ट मंत्र का जप लाभ दायक नहीं होता और सर्वथा फल सिद्धि नहीं होती।

५ शास्त्र वचन में अश्रद्धा। भगवान ने गीता में कहा है—

यः शास्त्र विधि मुत्सृज्य वर्तते काम कारतः।
नससिद्धि मवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

जो शास्त्र विधि को परित्याग करके अपनी स्वतंत्र इच्छा से आचरण करता है उसे न तो सिद्ध होती है न सुख मिलता है और न परलोक ही प्राप्त होता है। जैसे दूसरी जगह जाने वाली चिट्ठी के लिफ़ाफ़े पर एक आने का टिकट लगाने का नियम है उसके बदले यदि हम एक आने के पैसे की पुड़िया बांध के लिफ़ाफ़े में बंद कर लेटर बक्स में छोड़ दें तो उसका परिणाम यह होगा कि चिट्ठी निकालने वाला

लिफ़ाफ़ा खोल के पैसे अपनी जेब में रख लेगा और चिट्ठी फाड़ के फेंक देगा इसका कारण यह है चिट्ठी पर एक आने का टिकट लगाने की जो विधी है उसका भंग करना है अतः विधि में विपरीतता होने के कारण निष्फलता ही नहीं किंतु विपरीत फल होता है इससे भगवान की आज्ञा है कि—

तस्माच्छास्त्र प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्र विधानोक्तं कर्म कर्तु मिहाहर्सि॥

अर्थ—तिससे शास्त्रही कार्या कार्य व्यवस्थिती में प्रमाण है उसको जानके यथावत् कर्म करना चाहिये। इससे विधिवत् जो नाम जप होता है उसी से सफलता होती है।

६—वेद वाक्य में अश्रद्धा—कहा भी है कि—

वेदोऽखिलो धर्म मूलम्।

चारों वेद धर्म के मूल हैं इससे जब धर्म मूल स्वरूप वेदों में ही अश्रद्धा होगी तब नाम जप रूपी धर्म वृक्ष फल कैसे दे सकेगा।

७-तथार्थ वादो हरि नाम्नि कल्पते ।

राम इस दो अक्षर वाले नाम का जप करने से मोक्ष होता है।

रामेति द्व्यक्षरे नाम जपन्मुक्ति मवाप्नुयात् ।

ऐसे बचनों में अर्थ वाद भ्रम होना-जैसे कहना कि अजी ये तो लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये अतिशयोक्ति है भला कहीं राम नाम लेने से मोक्ष हो सकता है ऐसे भ्रम में फंसे हुये मनुष्य वेदोक्त साधनों से रहित होके नाम जप में असफल होते हैं।

नाम्नेवलाद्यस्य पापबुद्धिः ।

कोई यदि यह कहता रहे कि मुझे तो केवल भगवन्नाम का आधार है। मैं यदि हिंसा असत्य भाषण व्यभिचारादि दुष्कर्म भी करूँगा तो मुझको कोई पाप नहीं लगेगा । भला भगवन्नाम के आगे ये संध्या बंदनादि कोई चीज़ है।

मुझे विधि निषेध की कोई परवा नहीं है। मैं तो केवल नाम से ही कृतार्थ हूं। ऐसे विचारों से नाम जप करता रहे तो यह आग्रह जप कर्त्ता को अधोगती देने वाला है इससे इसको भयंकर दोष जान के इसका परित्याग करना चाहिये।

भगवन्नाम जप और इतर धर्म में समता मानना। जैसे—

हरे राम हरे राम राम २ हरे २।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण २ हरे २ ॥

यह कलि संतरणोपनिषत का महामंत्र है इसका साढ़े तीन करोड़ पुरश्चरण करने को कहा है इसके सम्बन्ध में यदि यह कहा जाय कि धर्म तो सभी समान है चाहे हरे राम कहे चाहे अल्लाह या क्राइस्ट कहे सबका फल बराबर है इसी महामंत्र में कोई विशेषता नहीं ऐसी भावना करना नाम जप में बहुत बड़ा दोष है क्योंकि अपने धर्म शास्त्रों में तो राम कृष्ण

गणपति, शिव, सूर्य आदि सब नामों के जप का फल भिन्न २ वर्णन किया है। फिर खुदा, ईसामसीह के नामों से कैसे समता की जा सकती है। अपने इष्टदेव के नाम जप के साथ धर्मान्तर की समानता का भाव रखना सर्वथा त्याज्य है।

यह १० दस दोष हैं इनसे सर्वथा मुक्त होके जब नाम जप किया जायगा तभी वह यथार्थ फल दायक हो सक्ता है।

इससे प्रतिबंध रूप उपरोक्त १० दोषों को परित्याग अवश्य करना चाहिये। तभी जप का यथेष्ट फल संपादन में समर्थ हो सकता है परन्तु इन दश अपराधों का प्रायश्चित्त भी नाम जप ही है।

॥ दशमोऽध्याय समाप्तः ॥

एकादश अध्याय

॥ वर्णाश्रम धर्म ॥

प्रश्न—हे भगवन् नाम स्मरण ही से सर्व पाप क्षय हो सकता है तो वर्णाश्रम धर्म संपादन करना और उसके नियमों के पालन की क्या आवश्यकता है।

उत्तर—तुमने ठीक कहा कि नाम स्मरण से सर्व पाप क्षय होता है इसमें किंचित् मात्र संदेह नहीं वेद शास्त्र भी सब प्रकार २ के कहते हैं, परन्तु जिस वेद ने नाम की महिमा गाई है। उसी वेद भगवान् ने चारों वर्णों की शृंखला भी तो बाँधी है उसका उच्छेद करना भी तो वेद भगवान की आज्ञा का उल्लंघन ही करना है। यही बात भगवान श्री कृष्ण ने भी गीता में स्पष्ट रीति से कहा है—

चातुर्वर्ण्यं सृया सृष्टं गुण कर्म विभागशः ।
तस्य कर्तार मपि मां विध्य कर्तारम व्यम् ॥

चारों वर्ण हमही ने गुण कर्म के विभाग से उत्पन्न किये हैं अर्थात तीनों गुणों के अनुसार तीनों वर्णों की प्रकृति होने से उन्हीं गुणों के अनुसार कर्म का भी विभाग किया है तिसके कर्त्ता अर्थात् ईश्वर रूप से हमीं को जानो और ब्रह्म रूप से अकर्त्ता भी हमही को जानो जब गुण और कर्मों के अनुसार चारों वर्णों की सृष्टी हुई है तो उन ही गुणोंके और कर्मों के अनुसार स्वभाव होना आवश्यक है फिर जब गुण और कर्मों के अनुसार स्वभावअनिवार्य्य सिद्ध हुवा तो वह स्वायं ही अपने वर्णाश्रम के अनुकूल व्यवहार करेगा जैसे

शमः दमः तपः शौचं क्षांति रार्जव मेवच इत्यादि ब्राह्मण के लक्षण वर्णन किये और

शौर्य तेजो धृति दाक्ष्यं युद्धे चाप्य पलायनम्॥
शूरता, तेज धैर्य्य दक्षता नाम कार्य्य कुशलता युद्धसे मुंह न मोड़ना इत्यादि क्षत्रिय के स्वभावभी स्वाभाविक क्षत्रियोत्पन्न में देखे जाते हैं। कृषि वाणिज्यादि स्वभाव वैश्यों में स्वाभाविक ही देखने में आते हैं। सेवा कर्म शूद्रों में स्वाभाविक देखने में आता है।

जब ये सब लक्षण स्वाभाविक प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते हैं तब उन वर्णाश्रम के कर्म जो वेद शास्त्रों में वर्णित हैं वह भी आकाट्य रूप से करने योग्य हैं यह सिद्ध हुवा और भगवान् ने भी जाति स्वभाव पर ज़ोर देके कहा है—

यदहंकार माश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वाँनियोक्ष्यति॥

अर्थ—हे अर्जुन यदि तु अभिमान वश वर्ण धर्म रूप युद्ध को न करेगा तो तेरी क्षात्र प्रकृति बलात्कार से युद्ध करने में प्रवृत करेगी,

क्योंकि वर्णधर्मानुरूप प्रकृतीस्वयं कार्य्य करावेगी-जो प्रकृति इतनी बलवान हुई तो ईश्वर रचित वर्णधर्म अवश्य ही करणीय हैं ये सिद्ध हुआ। उसी के आगे और भी कहा है।

स्वभावजेन कौंतेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुंनेच्छासि यन्मोहात्करिष्यस्य वशोपितत्॥

अर्थ-गुण,कर्म,जन्य स्वभावसे बंधा हुवा यदि मोह वश स्वधर्म को त्यागने की इच्छा करेगा तो स्वभाव वश वैसा ही अवश्य करेगा—इस से भगवद्वाक्य से यह सिद्ध हुआ कि यदि मोह वश वा मूर्खता वश वर्णाश्रम का त्याग भी करेगा तो भी कालांतर में पुनः उसी कार्य्य में प्रवर्त होगा इससे एक बार नियत कर्म को त्याग के पुनः वही कार्य्य करना बुद्धिमानी नहीं इससे ईश्वर रचित और ईश्वरीय आज्ञानुसार अपने वर्णाश्रम धर्मों को सदा पालन करते हुये नाम

स्मरण नाम संकीर्त्तन आदि ईश्वराराधन अन्य समय में अवश्य करना चाहिये।

पूर्व जो २ महान पुरुष हुये हैं सबों ने वर्णाश्रम धर्मों को करते हुये ही नाम स्मरण नाम संकीर्तन का प्रचार किया है।

महात्मा रामदास स्वामी का वर्णाश्रम धर्मों को पालन करते हुये ही नाम महात्म्म प्रचार देखा जाता है। जगत्गुरू शंकराचार्य्य तो यद्यपि वर्णाश्रम धर्म में सबको प्रवर्त कर रहे हैं और ज्ञानेश्वर एकनाथ तुकाराम आदि पूर्व के महात्माओं ने स्व २ वर्णाश्रमानुकूल आचरण करके जनता को भक्ति मार्ग का उपदेश तथा नाम स्मरण में प्रवृत्ति कराई है इससे पूर्व महात्माओं के आचरण को प्रमाण मान के हमको भी तदनुकूल आचरण करना चाहिये।

तथा युक्तिसे भी बिचार करके देखा जाय तो भी यही सिद्ध होता है। जिस जाति में

उत्पन्न हुआ है उसको उसी जाति का अभिमान होता है जैसे ब्राह्मण को ब्राह्मणपने का क्षत्रिय को क्षत्रियपने का और अपने २ जाति अनुसार व्यवहार बर्ताव करने में ही तीव्र प्रवृत्ति देखने में आती है और स्वभाव भी उसी जाति के अनुसार प्रत्यक्ष अनुभव में आता है इससे उस वर्ण आश्रम के कर्म अवश्य मेव करके भगवद्भक्ति नाम स्मरण आदि करना चाहिये क्योंकि धर्म शास्त्र में मन्वादिकों ने कहा है। कि ब्राह्मण को संध्या बंदनादि कर्म करने में विशेष पुण्य नहीं, किन्तु न करने में पाप है। इसके लिये मन्वादिकों ने प्रायश्चित्त का विधान किया है। ऐसे ही क्षत्रिय आदि को भी प्रजा पालन दुष्ट दमन आदि से विशेष पुण्य नहीं, किन्तु न करने से पाप भागी कहा है इस से सिद्ध होता है कि जो जिस जाति में उत्पन्न हुआ है उसको उसी जाति के अनुसार अवश्यमेव

आचरण करना चाहिये । अन्यथा दोष का भागी होगा इससे वेद शास्त्र के प्रमाण और युक्ती से यह सिद्ध हुवा कि यथा शक्ति अपने वर्णाश्रम के धर्म्मों को आचरण अवश्य करना चाहिये ।

इसी प्रसंग में भगवत्गीता के दो चार प्रमाण और देके इस लेख को समाप्त करेंगे इस विषय पर स्थल २ पर मनु आदि के प्रमाण देने से ग्रन्थ बहुत बढ़ जायगा इस कारण बहुत प्रमाण न देके केवल सर्व मान्य भगवत्गीता के दो चार प्रमाण दिये जाते हैं विशेष प्रमाणों की जिन्हें उपेक्षा हो वे मनुयाज्ञवल्क्यादि स्मृतियों में देख सक्ते हैं श्री भगवान ने गीता में कहा है—

स्वे२ कर्मण्य भिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्म निरतःसिद्धिं यथा विंदति तच्छृणु ॥
यतःप्रवृत्ति र्भूतानां ये न सर्व मिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यम्यर्च्यसिद्धिं विंदति मानवः ॥

अपने २ कर्म में निरत होके अर्थात अपने अपने जाति आश्रम के कर्म को करने से जीव संसिद्धी को प्राप्त होता है। इससे स्वजाति आश्रम के कर्मों को करने से जैसे सिद्धी प्राप्त होती है सो श्रवण करो।

जिस परमात्मा के प्रकाश से जीवों की प्रवृत्त होती है और जिस परमात्मा से यह जगत ब्याप्त है उस परमात्मा का अपने कर्मों से अर्थात् अपने २ जाति आश्रम के कर्मों से अर्चन करो उससे ही मनुष्य सिद्धी को प्राप्त होता है। इससे सर्व महापुरुषों तथा सज्जनों से हाथ जोड़ के विनीत प्रार्थना है कि वेद शास्त्र श्रुति स्मृति प्रति पादित वर्णाश्रम धर्म्म की शृंखला का उच्छेद का उद्योग न कर सनातन धर्म रूप वर्णाश्रम धर्म का उपदेश देके जनता को सनातन प्राचीन मार्ग में प्रवर्त करें क्योंकि यद्यपि इस कलिकाल में नाना मत भेद

नवीन २ सांप्रदायों से वर्णाश्रम का लोप सा होता जाता है तथापि यह सनातन धर्म कभी लोप नहीं हो सकता इससे भगवान ने भी कहा है

यः शास्त्र विधि मुत्स्टज्य वर्तते काम कारतः।
न स सिद्धि मवाप्नोति न सुखं न परां गतिम ॥
तस्माच्छास्त्र प्रमाणं ते कार्या कार्य व्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्र बिधानोक्तं कर्म कर्तु मिहार्हसि ॥

अर्थ—हे अर्जुन जो शास्त्र विधि को छोड़ के मन मुखी काम करता है वह न सिद्धी को प्राप्त होता है और न सुख को प्राप्त होता है न परांगति नाम मोक्ष को ही प्राप्त होता है तिससे कार्य्य अकार्य्य की व्यवस्था करने में शास्त्र ही प्रमाण मानना चाहिये इससे शास्त्र विधी को जान के कर्म करना योग्य है तथा और भी कहा है—

यद्यदा चरित श्रेष्ठ स्तत्त देवे तरो जनः।
सयत्प्रमाणं कुरु ते लोकस्तत्नु वर्तते ॥

अर्थ—जैसा २ श्रेष्ठ जन आचरण करते हैं उसी को देख के इतर जनों की भी प्रवृत्ति होती है और जिस विषय को श्रेष्ठ जन प्रमाण मानते हैं उसी के अनुसार अन्य साधारण जन भी आचरण करते हैं और प्रमाण मानते हैं।

॥ एकादशोऽध्याय समाप्तः ॥



द्वादश अध्याय

॥ सदाचार ॥

प्रश्न—हे भगवन् सदाचार किसको कहते हैं और उसका क्या तात्पर्य है और कैसे आचरणमें लाया जाता है सो कृपा करके कहिये।

उत्तर-हे प्रिय अपने वर्ण आश्रम धर्म्मानुकूल शारीरिक व्यापार को आचार कहते हैं प्रातः-काल से लेके रात्रि को सोने के समय तक किस २ प्रकार शारीरिक चेष्टाओं के करने से शरीर की उन्नति और उसके द्वारा मानसिक उन्नति हो सकती है इसी का नाम सदाचार है क्योंकि शरीर रक्षणार्थ इसकी विशेष आवश्यकता है। शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्। प्रथम धर्म साधन शरीर रक्षा ही है-इसी से स्मृति में आचार को प्रथम धर्म कहा है।

आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एवच।
तस्मादस्मिन सदायुक्तोनित्यं स्यादात्मवान्द्विजः

श्रुति स्मृतियों में आचार ही प्रथम धर्म कहा है इससे द्विजाति मात्र को आचार का पालन करते हुये शरीर रक्षा तथा आत्मा की उन्नति करनी चाहिये इसके करने से और न करने से क्या होता है इस विषय में पूर्व पश्चिम के विद्वानों ने नवीन२ बहुत आविष्कार किये हैं।

आचाराल्लभते ह्यायु चाराल्लभते श्रियं ।
आचाराल्लभते कीर्तिं पुरुषः प्रेत्यचेहच ॥
सर्वलक्षण हीनोऽपिय सदाचारवान् भवेत् ।
श्रद्दधानोऽनुसूयश्च शतंवर्षाणि जीवति ॥
अनभ्यासेन वेदानामा चारस्यच वर्जनात् ।
आलास्यातन्न दोषाच्चमृत्युर्विप्रान्जिघांसति ॥

अर्थ—सदाचार के पालन से आयु तथा श्री की वृद्धि और इह लोक परलोक में मनुष्य को यश लाभ होता है। और कोई लक्षण न होने पर भी केवल आचार और शास्त्र में श्रद्धा के बल से मनुष्य सौ वर्ष तक जीवित रह सकता है।

आत्मोन्नति कर शास्त्र के नियमित न पढ़ने से, आचार हीन होने से, आलसी होने से, खराब अन्न(कुधान्य)खानेसे मनुष्य अल्पायु होजाता है।

इसी सिद्धान्तका ठीक अनुभवकर जेमिलर-सेवर्न साहब ने लिखा है। दीर्घायु लाभ के लिये प्राधानतः इन विषयों पर ध्यान रखना होता है यथा खाने पीने की बस्तु ढकके रखना, मिताहार, संयम, सत चारित्रता, शाँतमन और शान्ति युक्त जीवन होना चाहिये। अति भोजन, मद्यपान, आलस्य परायण, अपनी प्राण सांक्ति को ब्यर्थ क्षय करने वाले दीर्घायु नहीं पा सकते 'क्वेकर' धर्म मतवाले जिनके अभ्यास बहुत ही नियमित और मनोवृत्ति संयत हैं प्रायः दीर्घ जीवी होते हैं फ्रांसदेश वासी इन विषयों में कम संयत होने से प्रायाः अल्पायु होते हैं। दीर्घायु होने के लिये संक्षेप से नियम बताये जाते हैं यथा कर्म करना समाज का हित करना, सब विषयों में अति करने

से रहित होना अर्थात् किसी काम में अति नहीं करना अति मानसिक बेग अति द्रोहादि सभी विषयों में अति नहीं करना शरीर और मन को अच्छे काम में लगाये रहना मानसिक शान्ति आत्म संयम का अभ्यास बढ़ाते रहना चाहिये

यदि स्वास्थ्यकी इच्छा हो तो हमारा शरीर मन जिससे समाज के काम का उपयोगी हो ऐसा करना चाहिये। प्रकृति माता आलस्य परायण मनुष्य को पंसद नहीं करती आचार के अंतर्गत शारीरिक व्यापार प्रकृति के नियमों के पूर्ण अनुकूल हैं क्योंकि प्रकृति के नियमानुकूल चलने पर ही स्वास्थ्य की रक्षा तथा मानसिक उन्नति होती है।

सदाचार में प्रथम कृत्य ब्राह्म मुहूर्त में शय्या त्याग है ढाई घड़ी का घंटा होता है रात्रि के अन्त की चार घड़ियों में से पहिली दो घड़ी ब्राह्ममुहूर्त और पिछली दोघड़ी रौद्रमुहूर्त कहते हैं।

महर्षियों ने इसी ब्राह्म मुहूर्त में शय्या त्याग लिखा है इसका कारण यह है कि ब्राह्म मुहूर्त में श्रीसूर्य्य भगवान रात्रि के पश्चात् अपनी ज्योति और शक्ति का बिस्तार करते हैं अतः उस समय जागने पर श्री सूर्य्य भगवान् की शक्ति से अपनी शक्ति बहुत बढ़जाती है और उनकी ज्योति के प्रभाव से शरीर और मन बुद्धि प्रकाशित होती है।

शरीर मन बुद्धि में रात्रि के प्रभाव से जो जड़ता आगई थी सो सूर्य शक्ति और ज्योति के प्रभाव से हट के नवजीवन प्राप्त होता है। ब्राह्म मुहूर्त में उठने के उपदेश में महर्षियों का यही अभिप्राय है कि प्राण के देवता श्री सूर्य भगवान हैं ब्राह्म मुहूर्त में उनके महाप्राण के साथ अपने प्राणों को मिला के मन ही मन उनको प्रणाम करते हुये 'ब्रह्मामुरारिस्त्रिपुरांतकारी' आदि स्तोत्र पाठ करना चाहिये इन स्तोत्रों के

पाठ से सब कार्य भगवत्कार्य होजाते हैं सूर्य को इस असीम शक्ति के लाभ के विषय में टिनडाल साहब कहते हैं–

संसार में समस्त क्रिया तथा समस्त शक्ति की उत्पत्ति करने वाला सूर्य्य ही है विद्युत् शक्ति प्रमाण शक्ति की खान भी सूर्य्य ही है। मनुष्य तथा सब जीव मात्र और धातु तक इसी सूर्य्य शक्ति को लेते हैं और यथा क्रम अपने २ शरीरों में भिन्न २ प्राण शक्ति रूप से प्रेरित करते रहते हैं। इससे जितना संभव हो सके सूर्य्य किरण को अपने भीतर लेना चाहिये सूर्य्य किरण में प्राण शक्ति है। इससे अपने घर में भी प्राण शक्ति का संचार कराना चाहिये ब्राह्म मुहूर्त में उठने से और भी कई लाभ हैं सारी रात चन्द्र और नक्षत्रोंके किरणोंके साथ जो अमृत बरसता है उषा काल में उसी को लेके वायु चलता है, उस अमृत भरे वायु को वीर वायु कहते हैं

बीर वायु शरीर में लगने से शरीर में बल वृद्धि और मुख की कांति बढ़ती है बुद्धि सतेज मन प्रसन्न और शरीर निरोग होता है। हमारे सांसारिक पिता को छोड़ के पितृ लोक में अनेक प्रकार के पितृगण होते हैं, प्रातःकाल में पितृगण प्रसन्न होते हैं और उनकी बलवृद्धि होती है। वही बल वे संसार में प्रचारित करते हैं इसलिये ब्राह्म मुहूर्त में उठने पर पितृ गणा का बल प्राप्त होता है जिससे स्वास्थ्य सुरक्षित रहता है और शक्ति बढ़ती है। यह सब फल शीघ्र शय्या त्याग करने से प्राप्त होते हैं।

शय्या त्याग कर मन ही मन ब्रह्मा मुरारि-स्त्रिपुरान्त कारी इन श्लोकों का पाठ करने से सर्व व्यवहारिक कार्य भगवत्कार्य हो जाता है। इसका भी रहस्य और उन श्लोकों को भी संक्षेप से लिखते हैं—

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरांत कारी भानुः शशी भूमि सुतो बुधश्च गुरुश्च शुक्रः शनि राहु केतवः कुर्वंतु सर्वे मम सु प्रभातम् ॥

ब्रह्मा, विष्णू, शिव, भानु, चन्द्रमा, मंगल बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु केतु यह सब देवता हमरा सुप्रभात करैं क्योंकि प्रातः काल मंगल होने से सब दिन मंगल ही होता है।

त्रैलोक्य चैतन्य मयादि देव—
श्रीनाथ विष्णो भवदाज्ञयैव।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं—
संसार यात्रा मनुवर्त शिष्ये॥

अर्थ—हे त्रैलोक्य को चेतन करने वाले चैतन्य स्वरूप आदि देव हे श्रीनाथ विष्णो आपही की आज्ञा से संसार यात्रा को करता हूं।

ऐसे कहते हुये भगवान की आज्ञा नाम प्रेरणा से सांसारिक कार्य करता हूँ। इस प्रकार

भावना और दृढ़ निश्चय पूर्वक पाठ करने से सब गृह कार्य करते हुये भी निर्लेप रहेगा।

प्रातः पठनीय श्लोक बहुत हैं परन्तु विस्तार भय से आवश्यकीय सार मात्र दो श्लोक यहां लिखे गये हैं। जिन महाशयों को अधिक की इच्छा हो सो शास्त्रों से या विद्वानों से पूछ लेवें। शय्या त्याग के पहिले शौच क्रिया को शीघ्र जाने से शरीर निरोग रहता है क्योंकि शौच की भीतर चेष्टा होते ही शारीरिक रस का शोषण होने लगता है। इससे यदि प्रातः शौच न जाके दूसरे काम में लग जांय तो मल का दूषित रस रक्त में मिल जायगा। जिससे मल कठिन होके अनेक व्याधि उत्पन्न करेगा और रक्त विकार खुजली फोड़े आदि भी होने का सम्भव है और शरीर तथा मुख में दुर्गंध भी आने लगेगी इससे शय्या त्याग कर पहले ही शौच जाना चाहिये।

शौच होते समय थूकना, हांफना, बोलना नहीं चाहिये क्योंकि इन कामों से ऊपरी भाग के स्नायु काम करने लगेंगे और नीचे के भाग की स्नायु आदि काम न करेंगी इससे कोठा शुद्ध न होने के कारण अनेक रोग उत्पन्न होना स्वाभाविक है इसी से शास्त्रों में भी इन कामों का शौच समय निषेध किया है। विशेष बातें शास्त्र में देख लेना चाहिये यहाँ तो संक्षेप से मुख्य२ बातोंका संक्षेप से विवरण किया गया है। फिर दंत धोवन आदि कर स्नान करना।

❀ स्नान के दश गुण होते हैं ❀

गुणा दश स्नान परस्य मध्ये,
रूपं च तेजश्च बलं च शौचम्।
आयुष्पमारोग्यम लोलुपत्वम्,
दुः स्वप्न घातश्च तपश्च मेधा॥

अर्थ—प्रातः स्नान करने से रूप, तेज, बल शौच, आयु, आरोग्य, लोभ हीनता, दुःस्वप्न

नाश, तप, मेधा इन दश गुणों का लाभ होता है ।

इन दश गुणों में चन्द्र सूर्य ही कारण हैं। रात भर चन्द्र किरण के चन्द्रामृत से जल पुष्ट रहता है। सूर्योदय के बाद वह अमृत आकृष्ट हो जाता है अतः सूर्योदय के पूर्व स्नान कर लेने से वह अमृत स्नान करने वाले को प्राप्त होता है। ऐसे ही सूर्य रश्मि से जो शक्ति जल में प्रवेश करती है वह रात की ठंडक से जल ही में रह जाती है। इसीसे शीत काल में प्रातःकाल जल गरम रहता है उसी जल में सर्व ऋतु में और विशेषतः शीत ऋतु में स्नान करने से बड़ा ही लाभ होता है। रोग के कीटाणु प्रायः जल ही में रहते हैं। सूर्योदय से पूर्व वे गम्भीर जल में चले जाते हैं सूर्य-किरण देख के ऊपर जल में आजाते हैं अतः प्रातः स्नान करने से रोग के कीटाणु का भी

स्पर्श नहीं होता अतः बुद्धिमान् जनों को प्रातः काल ही स्नान कर लेना चाहिये।

स्नान करके चन्दन, भस्म, तिलक आदि धारण करना चाहिये जो जिस देवता के भक्त हों वे अपने उपास्य के चिन्ह धारण करें तो उनके हृदय में भक्ति और पूजा के भाव स्वतः ही आने लगते हैं ऐसे शुद्ध शरीर और पवित्र अन्तःकरण होके भगवान् का पूजन संध्योपासनादि करना चाहिये।

❀ शून्य मस्तक संध्योपासन पूजादि का निषेध ❀

ललाटे तिलकं कृत्वा संध्या कर्म समाचरेत्।
अकृत्वा भाल तिलकं तस्य कर्म निरर्थकम् ॥

॥ प्रयोग पारिजात ॥

संध्या के बाद तर्पण बलि वैश्व देवादि करके भगवान को भोग लगाके भोजन, विधि पूर्वक द्विजाति भोजन करे तर्पण बलि वैश्व देव

भोजन विधि आदि संक्षेप से करने की इच्छा हो और इन कर्मों को अवकाश विशेष न हो तो हमारी बनाई संक्षिप्त पंच महा यज्ञ देखना चाहिये। मनु ने कहा है—

आर्द्र पादस्तु भुंजीत नार्द्र पादः स्वपेन्निशि।
आर्द्र पादस्तु भुंजानो दीर्घमायुर वाप्नुयात् ॥

अर्थ—भींगे पैर से भोजन करे परन्तु शयन न करे भींगे पैर से भोजन करने से आयु बृद्धि होती है। तैसेही प्रांमुखो मौनमास्थितः मनुः।

पूर्व की ओर मुख करके मौन धारण कर भोजन करे उसका कारण यह है कि योगशास्त्र में श्वास की गति भोजन में २० अंगुल कही है—श्वास की गति अधिक होने से आयु घटती है और कम होने से बढ़ती है। ऐसे ही लोभ से भोजन करने में तथा हाथ पैर न धोके भोजन करने में भी श्वास की गति बढ़ती है।

ऐसे मौन होके भोजन करने का कारण यह है कि भोजन करते हुये बकवास करने से लार कम बनती है जिससे मुँह सूखने से पानी पीना पड़ेगा लार कम बनने और मुँह सूखने से पानी पीने पर पाचन क्रिया में बाधा होगी।

भगवान के भोग लगाने का कारण यह है कि—संसार की सब बस्तू भगवान की बनाई है उन्हें पका के भगवान को अर्पण किये बिना खाने से निःसंदेह पाप होगा।

तैर्दत्ता न प्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एवसः।

अर्थ—देवताकी दीहुई वस्तु उन्हें समर्पण किये बिना खाता है वह चोर है अतः भगवान को अर्पण कर खाना चाहिये।

भावानुरूपंफलम्

भाव के अनुरूप फल होता है जैसी भावना करेगा वैसा हो जायगा ये मानस शास्त्र का विद्वानोंसे अनुभूत सिद्धान्त है और व्यवहार

में भी भावना के अनुसार फल होना प्रायः सभी अनुभव करते हैं इस बात को संकल्प सिद्धि नामक ग्रंथ में सप्रमाण सिद्धि कर आये हैं इससे वहां देखना चाहिये भगवान को अर्पण करने से भगवत्प्रसाद की भावना से अन्तःकरण की शुद्धी और भगवद्ज्ञान की उत्पत्ति होती है।

भोजन के पश्चात् कुल्ला कर अन्न कण दांत में न रहें नहीं तो वे कथा सड़ के नाना प्रकार के रोग गठिया आदि भी उत्पन्न होते हैं। इससे दांतों को सींक से साफ करके कुल्ला आदि से साफ करै पीछे गीली दोनों हथेलियों को परस्पर रगड़ते हुये नीचे लिखे मंत्र को पढ़ के आंख पर तीन बेर फेरने से दृष्टि तीव्र होती है। तिमिर आदि का नाश होता है यह अनुभूत प्रयोग है लोकोपकारार्थ यहां लिख दिया है।

शर्यातिं च सुकन्यां च च्यवनं शक्रमश्विनौ।
भोजनांते स्मरेन्नित्यं तस्य चक्षुर्न हीयते॥

भुक्त्वा पाणि तले घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते।
अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥

मध्यान्ह में भोजन के बाद दिन में सोना निषिद्ध है।

दिवा स्वप्नं न कुर्वीत स्त्रियं चैव परित्यजेत्।
आयुक्षीण दिवानिद्रा दिवास्त्री पुण्यनाशिनी ॥

अर्थ-दिन में सोने से आयु क्षीण और दिनमें स्त्री संग करने से पुण्य नाश होता है।

प्रश्न-हे भगवन् शयन किस दिशा की ओर करना और उससे क्या लाभ व हानि होती है सो कृपा करके कहिये।

उत्तर-शरीर के अंग प्रत्यंग को विश्राम न देने से वह चल नहीं सकता इससे निद्रावस्था में विश्राम मिलता है अतः निद्रा प्राणि मात्र के लिये आवश्यक है पशु पक्षी भी सो जाते हैं। मनुष्यों में परिश्रम के न्यूनाधिक्यता से निद्रा में

भी न्यूनाधिक्य होता है साधारतः ६ घंटा सोने से शरीरकीथकावट मिट जातीहै अधिक सोनेसे निद्रा में श्वास अधिक चलनेसे आयु क्षीण होती है। दिन में सोने का वेद में भी निषेध किया है। 'मा दिवा स्वाप्तीः' दिन में निद्रा न लो क्योंकि दिन में सोने से कफ आलस्य और जड़ता बढ़ती है और आयु क्षीण होती है।

समस्त ब्रह्मांड में सूर्य्य ही प्राण स्वरूप और शक्ति का निधान है इसलिये ब्राह्म मुहूर्त से संध्या समय पर्यंत जब तक सूर्य शक्ति पृथ्वी पर फैली रहे तब तक सूर्य के साथ सम्पर्क रखना चाहिये इससे जीव के क्षुद्र प्राण में सूर्य का महा प्राण संचित होके जीव दीर्घायु हो सकेगा। उष्ण काल में रात में निद्रा न आने के कारण बिकलता रहने से आवश्कतानुसार दिन में आध घंटा सो ले तो उसका निषेध नहीं परन्तु अन्य ऋतुवों में तो दिन में निद्रा सर्वथा त्याज्य है।

प्रश्न—हे भगवन् किस दिशा की ओर सिर करके सोना चाहिये।

उत्तर-पूर्व व दक्षिण की ओर सिर करके सोना हितकर है इस शास्त्र की आज्ञा में वैज्ञानिक रहस्य है समस्त ब्रह्मांड की गति ध्रुव की ओर है। और ध्रुव की स्थिति उत्तर दिशा में होने के कारण ब्रह्मांडातंर्गत पृथ्वी में जो विद्युत धारा प्रवाहित हो रही है उसकी भी गति दक्षिण दिशा से उत्तर की ओर है इसी से जहाज़ के कम्पास का कांटा सदाउत्तर की ओर ही रहता है समुद्र में दिशा ज्ञान का यही कांटा एक मात्र साधन है इस से उत्तर की ओर सिर करने से पार्थिव विद्युत हमारे पैरों से होके सिर की ओर प्रवाहित होगी जिससे सिर पीड़ा या अन्य सिर के रोग उत्पत्ति होंगे और नाड़ियों में अस्वाभाविक उत्तेजना बढ़ के शरीर अस्वस्थ हो जायगा।

दिन भर परिश्रम करने से नाड़ी और मस्तिष्क आप ही दुर्बल हो जाते हैं तिस पर निन्द्रावस्था में विद्युत्तेज यदि उलटा ग्रहण किया जाय तो शरीर अधिक अस्वस्थ होगा इसमें संदेह ही क्या है। यदि दक्षिण की ओर सिर करके सोवे तो विद्युत सिर से पैर की ओर जायगी जो स्वाभाविक है इससे किसी प्रकार क्लेश की सम्भावना नहीं। ऐसे ही पश्चिम की ओर सिर करके सोने से भी यही हानि होती है जो उत्तर की ओर सिर करके सोने से होती है क्योंकि जैसे पार्थिव विद्युत दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित होती है तैसे ही सूर्यदेव की प्राणमयी विद्युत शक्ति भी पूर्व से पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है इससे पश्चिम की ओर सिर करके सोने से भी मस्तिष्क और स्नायुओं में पीड़ा उत्पन्न होगी अतः पूर्व या दक्षिण की ओर सिर करके सोना उचित है।

आर्य शास्त्रों में जो पूर्व या उतराभिमुक बैठ के पूजा-पाठ-ध्यान-धारण करने की आज्ञा है इसका कारण भी यही है कि सूर्य की विद्युत और पृथ्वी की विद्युत शक्ति का संबंध शरीर के साथ बना रहे जिससे शरीर निरोग और बलवान हो हे प्रिय इस प्रकार सदाचार के लक्षण और उस का फल शास्त्र प्रमाण और मानस शास्त्र तथा वैज्ञानिक जिसे पश्चिमी विद्वान साइन्स कहते हैं परमगूढ़ रहस्य सबिस्तार युक्ति पूर्वक सिद्ध कर के वर्णन किया अब क्या सुनने की इच्छा है।

प्र०-हे भगवन वर्णधर्म किसे कहते हैं ये वर्ण व्यवस्था प्राचीन है या आधुनिक नवीन कल्पित है इसको प्राचीन जान के रखना चाहिये वा देश के लिये हानिकर जान के उठा देना चाहिये इत्यादि शंका आज कल पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त लोग करते हैं इस रहस्य को कृपाकर वर्णन कीजिये

उत्तर-प्रत्येक वस्तु के अस्तित्व के साथ प्रकृति

का मूल संबंध होता है। सो यावत् प्रकृति रहेगी तावत् वह वस्तु भी रहेगी इसमें कुछ संदेह नहीं ये बात दर्शन शास्त्र और विज्ञान सिद्ध है।

वर्ण धर्म किसी मनुष्य का बनाया हुवा धर्म नहीं किन्तु प्रकृति के त्रिगुणानुसार स्वभाव से उत्पन्न स्वाभाविक वस्तु है। प्रकृति के सत्व रज तम यह तीन गुण हैं। जीव तमो गुण के राज्य में उत्पन्न होके रजो गुण के भीतर से क्रमशः सत्व गुण की ओर चलता है और अंत में सत्व गुण की पराकाष्टा पर पहुँचके अंत में गुणातीत ब्रह्म में लीन हो जाता है। यह जो तीन गुणों के भीतर से जीव की उन्नति का क्रम है इसी को शास्त्रों में वर्ण धर्म कहा गया है। यावत् जीव तमो गुण में रहता है तावत् शूद्र कहाता है जब कुछ आगे बढ़ के रजो मिश्रित तमोगुण के अधिकार को पाता है तब वैश्य कहाता है।

जब और उन्नत होके रजोगुण मिश्रित सतोगुण की अवस्था को प्राप्त होता है तब क्षत्रिय वर्ण होता है तत्पश्चात् रज-तम से रहित शुद्ध सत्त्वगुण की अवस्था को प्राप्त होता है वही ब्राह्मण वर्ण है इस प्रकार संसार में सर्वत्र तीन गुणों के अनुसार चार वर्ण स्पष्ट तथा अस्पष्ट रूप से देखने में आते हैं। जहां प्रकृति की पूर्णता है तहाँ प्राकृतिक तीन गुणों की भी पूर्णता है। इससे वहाँ चार वर्ण स्पष्ट रूप से देखने में आते हैं और समाज की प्रचलित व्यवस्था में भी उसकी गणना होती है जहाँ प्रकृति की पूर्णता नहीं है किन्तु जिन गुणों की प्रधानता है उन्हीं के अनुसार वर्ण धर्म का अल्प प्रकाश देखने में आता है। जैसे भारतवर्ष में स्थूल, सूक्ष्म कारण तीनों प्रकृति पूर्ण है स्थूल प्रकृति की पूर्णता होने से यहाँ छहों ऋतुवों के पूर्ण विकास के अनेक लक्षण देखने में आते हैं।

सूक्ष्म अर्थात् दैवी प्रकृति की पूर्णता होने से यहाँ पर देव पीठ तथा अनेक भगवद् वतारों के प्रादुर्भाव होते हैं और कारण अर्थात् आध्यात्मिक प्रकृति की पूर्णता होने से यहाँ महर्षियों की शुद्ध बुद्धि द्वारा ज्ञान का भंडार वेद तथा ब्रह्मज्ञान का विकाश हुवा है इससे भारतवर्ष में प्रकृति की पूर्णता है तो तीनों गुणों की भी पूर्णता है इसी से भारतीय हिन्दू समाज में चार वर्णों की स्वाभाविक व्यवस्था है। इस स्वभाव के नष्ट करने पर हिन्दू जाति उन्नति नहीं कर सकेगी किन्तु स्वभाव के नाश से नष्ट ही हो जायगी। पृथ्वी के अन्य देशों में प्राकृतिक पूर्णता न होने से तीन गुणों की पूर्णता नहीं है इससे उन देशों की जातियों में भी वर्ण धर्म की स्वाभाविक समाज गत व्यवस्था नहीं है। इसी से जन्मांतर के तत्त्व मृत्यु के बाद जीवों की कर्मानुसार गति तथा पुनः पूर्व कर्मानुसार

मनुष्य लोक में उत्तम अधम जाति में जन्म इत्यादि तत्त्वों का पता उन लोगों को नहीं लग सका है और उनका धर्म ग्रंथों में भी इन विषयों का वर्णन देखने में नहीं आता है। वे जन्म को बिना कारण अचानक जन्म हो गया ऐसा कहते हैं परन्तु पाश्चात्य विद्वान हर्बर्ट स्पेन्सर का कथन है कि यह विचार की अपूर्णता मात्र है संसार में कोई कार्य्य बिना कारण नहीं होता तथापि तीनों गुणों का आँशिक विकास होने से वहाँ भी वर्ण धर्म का अस्पष्ट विकास है जो समाज में परि गणित न होने पर भी विचार-वान सूक्ष्म दर्शी पुरुष के दृष्टि में आता ही है केवल इतना ही नहीं किन्तु समस्त संसार त्रिगुणमयी प्रकृति का विकास रूप होने से अस्पष्ट रूप में मनुष्य के नीचे की योनियों में भी वर्ण धर्म की व्यवस्था देखने में आती है।

यथा तैतिरीय संहिता में-ब्राह्मणो मनुष्याणां अजः पशूनां। राजन्यो मनुष्याणामविः

पशूनां। वैश्यो मनुष्याणां गावः पशूनां। शूद्रो मनुष्याणां अश्वः पशूनां।

अर्थ—अर्थात् मनुष्य की तरह पशु योनि में बकरा आदि ब्राह्मण पशु, भेड़िया सिंहादि क्षत्रिय पशु, गौ आदि वैश्य पशु, अश्वादि शूद्र पशु। पक्षियों में शुक कबूतर आदि ब्राह्मण, बाज, तीतर आदि क्षत्रिय, मोर आदि वैश्य, काक गीध आदि शूद्र पक्षी हैं तथा बृक्षों में भी पीपर बरगद आदि ब्राह्मण, शाल सागवन आदि क्षत्रिय, आम कटहर आदि वैश्य, बांस आदि शूद्र।

बृक्षायुर्वेद में कहा है—

लघुयत्कोमलं काष्ठं सुघटं ब्रह्म जाति तत्।
दृढांगं लघु यत्काष्ठम् घटं क्षत्र जातितत्॥
कोमलं गुरु यत्काष्ठं वैश्य जाति तदुच्यते।
दृढांगं गुरु यत्काष्टं शूद्र जाति तदुच्यते॥

अर्थ—जो काष्ट हलका कोमल और दूसरे काष्ट से सहज ही मिल सकता है वह ब्राह्मण

जातीय है। जो काष्ट लघु और दृढ़ है तथा अन्य काष्ट से मिल नहीं सकता वह क्षत्रिय जातीय है। कोमल भारी काष्ट वैश्य जातीय है। तथा दृढ़ और भारी काष्ठ शूद्र जाति है। काष्ट की तरह मिट्टी में चार वर्ण देखने में आते हैं जैसे श्वेत वर्ण वाली ब्राह्मण, लाल वर्ण वाली क्षत्रिय पीत वर्ण वाली वैश्य, और कृष्ण वर्ण की मिट्टी शूद्र है।

मनुष्य से नीचे की योनि की तरह ऊपर की देव योनियों में भी चार वर्ण हैं। तैत्तिरेय संहिता में—अग्निर्देवता अन्व सृजंत, इन्द्रो देवता अन्व सृजंत विश्वेदेवा देवता अन्व सृजंत भूयि-ष्ठाहि देवता अन्व सृजंत।

अर्थ—देवताओं में अग्नि देवता ब्राह्मण हैं। इंद्रादि लोक पाल गण क्षत्रिय हैं। विश्वे-देवा वैश्यदेवता हैं अनेक श्रेणी के देवता शूद्र अतः यह सिद्ध हुआ कि त्रिगुण मयी प्रकृति के

सर्वत्र ही त्रिगुणानुसार चार वर्ण कहीं स्पष्ट और कहीं अस्पष्टरूप से विद्यमान हैं इससे ऐसा स्वभाव सिद्ध वर्णधर्म के नाशसे जाति उन्नत न होके नाश को ही प्राप्त होगी । इसको नष्ट न कर इसका सुधार तथा देश काल पात्रानुसार विचार कर कार्य्य करना दूर दर्शिता का कार्य्य होगा ।

॥ अब इसकी गंभीरता भी दिखाते हैं ॥

वर्ण जब प्रकृति का स्वाभाविक धर्म है तो प्रकृति के सर्व अंग तथा भावों के साथ इसका अवश्य ही संबंध होना चाहिये । अर्थात् जहाँ तक प्रकृति का प्रवेश है तहां तक वर्ण धर्म का भी संबंध मानना चाहिये । मनुष्य के स्थूल सूक्ष्म कारण तीनों शरीर त्रिगुण मयी प्रकृति के उपादान से ही उत्पन्न हुये हैं अतः त्रिगुणानुसार वर्ण धर्म का भी संबंध तीनों शरीरों के अथवा अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत तीनों भावों

के साथ अवश्य होगा। किन्तु तीनों की पूर्णता से वर्ण धर्म की पूर्णता समझी जायगी।

जन्म का संबंध स्थूल शरीर के साथ, कर्म का संबंध सूक्ष्म शरीर के साथ और ज्ञान का संबंध कारण शरीर के साथ है अतः कोई वर्ण जब तक जन्म, कर्म, ज्ञान में पूर्ण न होगा तब तक पूर्ण वर्ण नहीं कहला सकता। पूर्ण ब्राह्मण वही होगा जो जन्म से भी ब्राह्मण हो कर्म से भी ब्राह्मण हो और ज्ञान से भी ब्राह्मणोचित्त हो। पूर्ण क्षत्रिय वही होगा जिसमें जन्म कर्म तथा ज्ञान तीनों क्षत्रिय वर्णोचित हों ऐसे ही और दो वर्णों में भी जानना।

॥ महा भारत अनुशासन पर्व ॥

तपः श्रुतं च योनिश्चाप्येतद्ब्राह्मण कारणम्।
त्रिभिर्गुणैः समुदितस्ततो भवति वै द्विजः॥

तपादि कर्म, ज्ञान और जन्म तीनों से युक्त होने पर पूर्ण ब्राह्मण होता है।

तपश्रुतं च योनिश्चेत्ये तद्ब्राह्मण कारकम् ।
तपः श्रुताभ्यां यो हीनो जाति ब्राह्मण एवसः ॥

महाभाषत्रीणियस्यावदातानि विद्यायोनिश्चकर्मच।
एतच्छिवं विजानीहि ब्राह्मणाग्रयस्य लक्षणम् ॥

अर्थ—कर्म, ज्ञान और जन्म इन तीनों की पवित्रता से श्रेष्ठ ब्राह्मण कहाते हैं कर्म, ज्ञान हीन ब्राह्मण जाति ब्राह्मण है ये पातंजलि का मत है ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्णों की पूर्णता के लिये तीनों गुणों की अपेक्षा है—यदि केवल जन्म से ही ब्राह्मण हो किन्तु ब्राह्मणोचित कर्म न करे अथवा ज्ञानी न हो तो पूर्ण ब्राह्मण नहीं कहाता ऐसेही क्षत्रियादि के विषय में भी जानना । मनुः—

यथा काष्ठ मयो हस्ती यथा चर्म मयो मृगः ।
यष्य विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥

अर्थ—जैसे काष्ठ का हाथी और चर्म का

मृग नकली है वैसे ही ब्राह्मण भी नाम मात्र ब्राह्मण है।

यहां यह बात अवश्य ध्यान देने योग्य है कि जन्म, कर्म और ज्ञान इन तीनों के साथ वर्ण, धर्म का अति घनिष्ठ सम्बंध रहने परभी जन्म के साथ वर्ण धर्म का साक्षात् अति घनिष्ठ सम्बंध है क्योंकि पूर्व जन्म में मनुष्य जैसे कर्म करता है उसी के अनुसार ही ब्राह्मण आदि वर्णों में उसका जन्म होता है।

पातञ्जलि ने कहा है–

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगः ।

अर्थ–प्रारब्ध कर्म को मूल में रहने से उसके फल रूप जीव को जाति आयु और भोग ये तीन वस्तुयें मिलती हैं। जिसका पूर्व कर्म सत्व गुण प्रधान है उनका जन्म ब्राह्मण पिता माता से होता है। जिसका रजो सत्व गुण प्रधान है उसका जन्म क्षत्रिय पिता माता से होता है

जिसका पूर्व कर्म रजस्तम प्रधान है उसका जन्म वैश्य पिता माता से होता है और जिसका पूर्व कर्म तमः प्रधान है उसका जन्म शूद्र पिता माता से होता है ऐसे सत्वादि तीन गुण तथा पूर्व कर्मानुसार जीव का ब्राह्मणादि वर्ण तथा आर्य अनार्य आदि जातियों में जन्म होता है। इसी से भगवान् ने गीता में भी कहा है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्ठं गुण कर्म विभागशः।

सत्व, रज, तम तथा तदनुरूप कर्मों के विभाग के अनुसार चार वर्णों की सृष्टि की है मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र होने से एक वर्ण का मनुष्य यदि पुरुषार्थ करे तो अन्य वर्ण के मनुष्य का कर्म थोड़ा बहुत कर सकता है किन्तु पूर्व गुणों के अनुसार जो स्थूल शरीर बन चुका है उसका परिवर्तन एकाएक नहीं हो सकता इससे एक वर्ण का मनुष्य अपना कर्म उन्नत या अवनत करता हुआ दूसरे जन्म में अन्य वर्ण

बन सकता है किन्तु उसी जन्म में नहीं बन सकता। हां यदि विश्वामित्र नंदि केश्वरादि की नाईं असाधारण तप करे और उसके फल से स्थूल शरीर बदल के उच्च वर्ण का बन जाय तो एक ही जन्म में वर्ण बदल सकता है परन्तु ऐसे असाधारण कर्म का अधिकार बिरले को होता है।

इस तमः प्रधान कलियुग में असम्भव ही है। जीव के जन्म तथा कर्म का रहस्य न जान के आज कल कोई २ केवल इस जन्म के कर्म से ही वर्ण व्यवस्था मानते हैं और कहते हैं कि इस जन्म में जैसा कर्म करेगा वैसी उसकी जाति कहलायेगी यह सिद्धान्त सर्वथा भ्रम-युक्त है मनुस्मृति के गर्भादष्ट में- वर्षे ब्राह्मण मु पनयेत इस बचन से भी जन्म से ही जाति स्पष्ट सिद्ध होती है अतः ऐसी कल्पना करना ठीक नहीं। शुभाशुभ संस्कारानुसार इस जन्म में जीव किस २ तरह काम करता है।

इस विषय में शांति पर्व महाभारत में लिखा है—

बालो युवा च बृद्धश्च यत्करोति शुभाशुभं।
तस्यां २ अवस्था यां तत्फलं प्राति पद्यते ॥

पूर्व जन्म में बाल, यौवन, बृद्धावस्था जिस २ अवस्था में जीव जो २ शुभाशुभ कर्म संस्कार संग्रह करता है।

आगे के जन्म में ठीक उस २ अवस्था में जब २ संस्कारों का भोग होता है तब २ भोगता है। इस शास्त्रोक्त सिद्धान्त के अनुसार कुछ भी निर्णय नहीं किया जा सकता कि किसके जीवन में क्या और कैसा कर्म का उदय होगा। क्योंकि जीवों के प्राक्तन संस्कार तीनों गुणों के मिले हुये होते हैं अर्थात् बाल्य यौवन बृद्धत्व के बीच में मिले हुये संस्कार के बश होकर जीव नाना प्रकार के सात्विक, राजस, तामस तीन गुणों के कर्म करते हैं और उन२ अवस्थाओं में उनके संस्कार फलोन्मुख होते हैं।

पूर्व जन्म के किये हुये बालकपन के सद् सत्कर्मों का भोग आगे जन्म में बाल्यावस्था में ही होता है, अतः इस बात को कोई नहीं कह सकता कि मनुष्य के जीवन में किस समय कैसे कर्म का उदय होगा संसार में भी देखा जाता है कि घोर पाप करने वाले भी अचानक परम महात्मा बन जाते हैं और सदाचारी भी पतन हो जाते हैं अतः यदि इसी जन्म के अनुसार वर्ण व्यवस्था करनी हो तो एक ही मनुष्य के एक ही जीवन में कई वर्ण बन जांयगे। जैसे कोई ब्राह्मण देश काल के प्रभाव से ब्राह्मण वृत्ति के न चलने के कारण यदि वाणिज्य कार्य में लग जाय तो वह वैश्य हो जायगा फ़ौज में भरती होने पर क्षत्रिय हो जायगा पुनः किसी नौकरी के करने पर शूद्र हो जायगा। ऐसे एक ही घर में कितने वर्ण बनें इसका क्या ठिकाना है।

इसमें पिता के वर्ण के साथ पुत्र के वर्ण की एकता अनेक समय पर नहीं हो सकेगी क्योंकि दुकानदार वैश्य वर्ण के पिता का पुत्र पढ़ लिख के ब्राह्मण बन सकता है। एक पिता से उत्पन्न सहोदर भाइयों में भी कई प्रकार के वर्ण बन सकते हैं।

स्त्री पुरुष के माता पुत्र के वर्ण में भी भेद हो जायगा। अतः इस दशा में घर की कैसी व्यवस्था होगी और वैश्य पिताका ब्राह्मण पुत्र पितृ मातृ भक्ति कैसे करेगा इन सब बातों पर विचार करने से इस जन्म के कर्मानुसार वर्ण धर्म निर्णय की कल्पना सर्वथा भ्रम युक्त प्रमाणित हो जायगी। अतः केवल इस जन्म के कर्मानुसार वर्ण धर्म मानना अशास्त्रीय अदूरदर्शिता पूर्ण तथा भ्रमात्मक है।

वर्णधर्म की उपकारिता और आवश्यकता का विषय

वर्ण धर्म आर्य जाति का प्राण स्वरूप है इसके बिना आर्य जाति का संसार में कदापि

अस्तित्व नहीं रह सकता। आर्य जाति पर हज़ारों वर्षों से विजातीय अत्याचार तथा आक्रमण होने पर भी आज तक जो ये जाति जीवित है इसका भी मूल कारण वर्ण धर्म ही है। अतः ऊपरी दृष्टि से देख के इसके प्रति उपेक्षा न कर धैर्य्य पूर्वक सूक्ष्म दृष्टि से वर्ण धर्म की महिमा तथा उपकारिता के तत्व का विचार करना चाहिये तभी आर्य जाति का कल्याण होगा।

मनुष्य के शरीर में जितने अंग हैं उनका विचार करने पर उनको ४ भागों में विभक्त कर सकते हैं। मुख, मस्तक, हस्त उरूदेश या उदर और चरण। मनुष्य शरीरकी रक्षाके लिये जिन२ वस्तुओं की आवश्यकता होती है उनमें दिमाग़ सोच के शरीर रक्षा का उपाय निश्चित करता है हस्त उसका संग्रह तथा उसकी बाधाओं को दूर करता है। उदर संग्रहीत वस्तुओं को पका के मस्तक, हस्त, पाद सर्वत्र शक्ति पहुँचाता है

और चरण सेवक रूप से सारे शरीर को वस्तु संग्रह में सहायता करता है। अतः सम्पूर्ण शरीर की रक्षा के लिये इन चारो अंगों की आवश्यकता है। इनमें से एक अंग दूसरे अंग का कार्य कदापि नहीं कर सकता जैसे मस्तक का कार्य जो चिन्ता करना है सो हस्तादि नहीं कर सकते तैसे मस्तक भी हस्तादि का काम नहीं कर सकता, उदर का कार्य उदर ही कर सकता है अन्य नहीं कर सकते इससे अपने २ कार्य के विचार से चारों अंग आदर करने योग्य हैं और चारों की परस्पर प्रीति तथा परस्पर सहायता से सम्पूर्ण शरीर की रक्षा और स्वास्थ्य रक्षा होती है। जैसे शरीर रक्षा के लिये उपरोक्त ४ अंग हैं ठीक उसी प्रकार समाज रक्षा के चार वर्ण अंग रूप हैं।

ब्राह्मण हिन्दू समाज के विराट शरीर का मुख रूप या मस्तक रूप हैं, क्षत्रिय उसकी भुजा

है, वैश्य उदर है, शूद्र चरण है। सभी विराट पुरुष के अंग हैं और समाज की रक्षा के लिये सबकी परम आवश्यकता है इससे श्रुति में चार वर्णों की उत्पत्ति विराट् पुरुष के चार अंगों से बताई है।

ब्राह्मणोऽस्य मुख मासी द्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत॥

अर्थ—ब्राह्मण विराट का मुख है, क्षत्रिय बाहू है, वैश्य ऊरू है और शूद्र चरण है। इन चारों की शक्तियां परस्पर सहायक बन के कार्य करें और अपने २ कार्य में अधिकारानुसार तत्पर रहें तभी समाज में शांति रह सकती है इसी से महर्षियों ने इन चारो वर्णों की स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर की प्रकृति प्रवृत्ति तथा अधिकार को देख के चारों के लिये पृथक २ कार्य नियत किये है। भगवान ने भी गीता में ब्राह्मणादि

चारों वर्णों के कर्म, स्वभाव और गुणों के अनुसार कहे हैं।

ब्राह्मण क्षत्रिय विशां शूद्राणां च परंतप।
कर्माणिप्रवि भक्तानि स्वभाव प्रभवैर्गुणैः॥
शमो दमः, तपः शौच क्षांति रार्जव मेवच।
ज्ञानं विज्ञान मास्तिक्यं ब्रह्म कर्म स्वभावजं॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्य पलायनम्।
दानमीश्वर भावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजं॥
कृषि गोरक्ष वाणिज्यं वैश्य कर्म स्वभावजं।
परि चार्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजं॥

अर्थ—पूर्व कर्मानुसार स्भाव से उत्पन्न गुणों के द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों के कर्म कहे हैं। ब्राह्मणों का स्वाभाविक कर्म शम दमः, तप शौच, क्षांति सरलता, ज्ञान विज्ञान आस्तिकता मूलक है। क्षत्रियों का स्वाभाविक कर्म वीरता, तेज, धैर्य दक्षता युद्ध से न भागना दान ईश्वर भाव मूलक है। वैश्यों का स्वाभाविक

कर्म कृषि नाम खेती गोरक्षा वाणिज्य मूलक है। शूद्रों का स्वाभाविक कार्य सेवा मूलक है।

आर्य शास्त्रका सिद्धान्त है कि शूद्रकी प्रकृति कामप्रधान, वैश्यकी अर्थप्रधान, क्षत्रियकी धर्म प्रधान, ब्राह्मणकी मोक्षप्रधान होती है। आज कल नाना कारणों से स्वभाव का विपर्यय हो जाने के कारण चारों वर्णों में प्रकृति के अनुकूल कर्त्तव्य पालन अनेक स्थानों में नहीं देखा जाता उसमें वर्ण धर्म का कोई दोष नहीं किन्तु मनुष्य के कर्म विपर्यय, तथा जन्म विपर्यय का ही दोष है वर्ण धर्म की व्यवस्था सर्वथा प्राकृति है इसमें अणु-मात्र संदेह नहीं। प्रत्येक समाज की शान्ति-मयी स्थिति के लिये सदा चार वस्तुवों की उपेक्षा रहती है।

१—जाति को आत्माकी ओर उन्नत करनेके लिये ज्ञान तथा उच्च चिन्तन।

२—विदेशीय अत्याचार से बचाने के लिये तथा भीतरी शान्ति रक्षा के लिये स्थूल बल तथा शासन शक्ति।

३—स्थूल शरीर की रक्षा के लिये अन्न तथा द्रव्य संग्रह।

४—स्थूल आराम के लिये नाना प्रकार की सेवा। इस प्रकार श्रम विभागके साथ जो समाज या जाति अग्रसर होती है तथा प्रकृति प्रवृत्ति के अनुसार चार प्रकार के मनुष्य इन चारों कर्मों में नियुक्त किये जाते हैं उस समाज तथा जाति में कदापि कोई अवनति की संभावना नहीं होती किन्तु धीरे २ ऐसा समाज अवश्य ही उन्नति की ओर अग्रसर होता है।

महर्षियों ने इन चार वस्तुओंकी आवश्यकता देख के प्रकृति प्रवृत्ति के अनुसार आर्य जाति में चार वर्ण का कर्त्तव्य निर्देश किया था। शूद्र में तमोगुण अधिक है तमोगुण युक्त बुद्धि का यह

लक्षण है कि अधर्म में धर्म समझे तथा धर्म में अधर्म समझे जहाँ ऐसी बिपरीत बुद्धि हो वहां स्व-तंत्ररूपसे कार्य करने पर प्रमाद अनार्थादि उत्पन्न होंगे इससे शूद्र को महर्षियों की यह आज्ञा है कि वह स्वतंत्र कार्य न करके त्रिवर्ण के आज्ञा-नुसार उनकी सेवा रूप कर्त्तव्य पालन करें। ऐसे कर्त्तव्य पालन करने पर शूद्र शीघ्र ही जन्मान्तर में वैश्य योनि को प्राप्त होगा। वैश्य योनि में रजोगुण अधिक तमोगुण न्यून होनेसे धन लालसा वैश्य में होना स्वाभाविक है इस लिये उस धन लालसा के अधिक होने से जिससे अधो गति न हो इस कारण वैश्य को गो रक्षा और चार वर्णों का पालन आदि सत्कर्म में उस धन को उपयोग करने की आज्ञा दी गई है जिससे धर्म के द्वारा वैश्य उन्नत योनि को लाभ करसके वैश्य अवश्यमेव ऐसे स्वधर्म पालन से शीघ्र

क्षत्रिय जाति प्राप्त कर सकता है। क्षत्रिय वर्ण में रजो गुण और सतोगुण की प्राधानता है।

रजोगुण की प्रधानता होने से राजस शक्ति का उदय होना क्षत्रिय में स्वाभाविक है किन्तु वह राज शक्ति धर्मानुकूल न चलने पर प्रजा पीड़न अन्य जाति और राज्य पर अत्याचार आदि अनर्थ उत्पन्न करती है इससे सत्व गुण के साथ मिल के तदनुसार क्षत्रिय धर्मानुकूल राज्य पालन की ब्राह्मण वर्ण की रक्षा की तथा विजातीय अधार्मिक अत्याचार से राज्य के रक्षा की आज्ञा की गई है।

क्षत्रिय वर्ण यदि इस प्रकार धर्मानुकूल चले तो शीघ्र ही ब्राह्मण योनि में उसका जन्म होगा। ब्राह्मण योनि सत्व गुण प्रधान है इससे तप, साधन जितेन्द्रियता, संयम, आत्म ज्ञान लाभ, आत्मानुसंधान यह सब ब्राह्मण वर्ण के स्वाभाविक कर्तव्य हैं। ब्राह्मण जाति अन्य तीन

वर्णों को ज्ञान धन से धनी करेगी, अन्य वर्ण इसकी सेवा भोजन वस्त्रादि से रक्षा द्वारा इसको पुष्ट करेंगे।

यही ब्राह्मणों के साथ त्रिवर्ण का कर्त्तव्य है। ऐसे चार वर्ण परस्पर सहायता द्वारा समाज की रक्षा के लिये श्रम विभाग कर लेने पर तथा अपनी २ प्रकृति की प्रवृत्ति के अनुसार स्वधर्मानुष्ठान करने पर समाज में अवश्य द्रोह का अभाव अन धिकार चर्चा का अभाव और चिर शान्ति तथा आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त हो सकती है। पूज्यपाद महर्षियों ने इस प्रकार चार वर्णों में धर्म विभाग की विधि बता के खान, पान, बिवाहादि के साथ भी वर्ण धर्म का सम्बन्ध बताया है। क्योंकि अच्छी हो या बुरी हो खानदानी वस्तु बहु काल स्थायी होती है खानदानी वंशपरम्परा रोग उपदंश, उन्माद, राजयक्ष्मा आदि प्रपितामह से पिता, पुत्रादि, प्रपौत्रादि कितने

ही वंश तक लगे रहते हैं। खानदानी क्षत्रिय वीर क्षत्रिय होते हैं, खानदानी वैश्य व्यापार में बड़े निपुण होते हैं, खानदानी गाने बजाने वाले गीत वाद्य कला में बड़े कुशल होते हैं।

इससे खानदान उपेक्षा के योग्य नहीं, खानदान के साथ जाति का भी विशेष रूप से सम्बन्ध होता है जिसकी विद्युत् शक्ति रक्त के द्वारा वंश परं पराक्रम से बहुत पीढ़ी तक अपनी जाति में चली जाती है। रक्त का सम्बन्ध रोटी बेटी से है इससे खानदान ठीक रखने के लिये वर्ण धर्म से रोटी बेटी का सम्बन्ध ठीक रखना आवश्यक है नहीं तो किसी वर्ण में भी पूर्ण योग्यता के मनुष्य उत्पन्न नहीं हो सकते। जैसे एक खानदानी वैश्य है उसके रक्त में बुद्धि में धन कमाने की विद्युत् शक्ति भरी हुई है एक ब्राह्मण है उसका धर्म यह है कि धन को कुछ न समझ के उसे त्याग और तप तथा अध्यात्म

ज्ञान को ही धन समझ के उसे कमावे अब इन दोनों में जो बेटी रोटी का सम्बन्ध होगा तो इस सम्बन्ध से उत्पन्न संतान की कैसी प्रकृति होगी क्योंकि धन कमाने वाली वैश्य प्रकृति और धन त्यागने वाली ब्राह्मण की प्रकृति दोनों के मेल से जो खिचड़ी सी प्रकृति उत्पन्न होगी उसमें न पूरा धन छोड़ना ही आवेगा और न धन कमाना ही पूरा आवेगा इससे वर्ण संकर संतान न पूरी ब्राह्मण न पूरी वैश्य ही बनेगी ऐसे ही सहन् शीलता, तितिक्षा आदि ब्राह्मण का धर्म है किन्तु अपमान का बदला लेना क्षत्रिय का धर्म है इन दोनों के सम्बन्ध से किस प्रकार की प्रकृति की संतान उत्पन्न होगी ऐसी संतान न पूर्ण क्षत्रियवत युद्ध ही करेगी और न ब्राह्मण वत् सहनशील बनेगी इससे ४ वर्णों में रोटी बेटी के सम्बन्ध से कोई वर्ण ठीक न रह सकेगा और ऐसा होते २ सौ दो सौ वर्ष में चारों वर्णों

का नाश होके जाति ही नष्ट हो जायगी इसी से महर्षियों ने आर्य जाति को वर्ण संकरता से बचाया है।

मनु ने भी कहा है–

स वर्णाग्रे द्विजाती नां, प्रशस्ता दार कर्माणि।

अपने २ वर्ण में बिवाह को उत्तम कहा है।

ऐसे ही अथर्व वेद में कहा है–

ब्राह्मण एव पति र्न राजन्यों न वैश्यः।

ब्राह्मण स्त्री का ब्राह्मण ही पति होना चाहिये वर्ण धर्म के नाश से वर्ण संकर प्रजा जिस राज्य में उत्पन्न होती है वहाँ कुछ दिनों में प्रजा और राज्य दोनों का नाश होजाता है केवल मनुष्य में ही यह बात नहीं किन्तु पशु पक्षी आदि में भी देखा जाता है जैसे गधा तमोगुणी और घोड़ा रजो गुणी इन दोनों से उत्पन्न जो खच्चर की जाति बनाई जाती है उसका बंश कदापि नहीं चलता ऐसे ही पक्षी बृक्षादि में भी जानना क्योंकि वर्ण

संकर सृष्टि को प्रकृति स्वयं आगे चलने से रोकती है इसका कारण यह है कि प्रकृति के स्वभाविक तीन गुणों के अनुसार चार वर्ण हो सकते हैं।

वर्ण शंकर प्रजोत्पत्ति से पितरों का श्राद्ध नहीं होता ये भी विषय विज्ञान सिद्ध है क्योंकि मृत पितरों के साथ श्राद्ध कर्त्ता पुत्र के आत्मा का तथा मन का संबंध होता है इसी से पितृ गण श्राद्ध स्थान में आके श्राद्ध ग्रहण करते हैं। यह कार्य्य तभी होता है जब संतान का मन पिता माता के मन से ठीक मिला हुआ हो परन्तु वर्ण संकर प्रजा में ऐसा कदापि नहीं हो सकता क्योंकि उसमें पिता एक वर्ण का और माता एक वर्ण की होने से दोनों का विलोम सम्बन्ध होने से न पिता से ही मन मिलेगा और न माता से ही मन मिलेगा। अतः उसके किये हुये श्राद्ध से पितरों की बृद्धि

और प्रेत योनि से मुक्ति न होके उसका पतन ही होगा यही वैज्ञानिक सत्यता युक्त भय अर्जुन को महा भारत के युद्ध समय हुआ था और यही सर्व शास्त्रों में वर्णन किया है।

अतः सकल विचार तथा प्रमाणों से यही सिद्ध हुआ कि इस लोकमें सुख शान्ति चिरजीवन सर्व प्रकार की उन्नति और परलोक में देवताओं से सम्बंध पितरों की बृद्धि आदि कार्य वर्ण धर्म का अस्तित्व और परिपालन आर्य जाति के लिये सदा सर्वथा कर्त्तव्य है। इस विषय में पश्चिमी साइंस वेत्ताओं की सम्मती और प्रमाण देखना हो तो धर्म विज्ञान पृष्ट ३५७ और अंग्रेज्री के कल्पक नामक ग्रंथ में देखना चाहिये।

॥ द्वादशोऽध्यायः समाप्तः ॥



त्रयोदश अध्याय।

मानस शास्त्र।



प्रश्न—हे भगवन् परमार्थ में चित्त उन्नत हो रहा है वा अवनत हो रहा है इसकी परीक्षा तथा किसी सद्भाव को सदा मन में स्थित रहने का उपाय भी आपने बड़ी सरलता से विस्तार पूर्वक वर्णन किया अब कृपा करके मानसिक विकारों की निवृति होके मानसिक सुधार का तथा व्यसनादिकों की निवृति का उपाय कोई हो तो पूर्ववत् सरल रीतिसे वर्णन करिये जिससे सब साधकों को परमार्थ साधन में सहायता हो।

उत्तर—हे प्रिय यह प्रश्न बहुत अच्छा किया इससे अवश्यमेव साधकों को महान सहायता होगी परन्तु यहविषय मानसशास्त्रका होनेसे अति गहन और अतिसूक्ष्महै इससे प्रथम दृढ़ विश्वास

और तृतीय नियम पूर्वक अभ्यास की आवश्यकता है। इनमेंसे एक की कमी होगी तो किंचितमात्र लाभ नहोगा मानसशास्त्रका सिद्धान्त है कि संकेत नाम सूचनासे मनपर बड़ाप्रभावपड़ता है। नियम पूर्वक नित्य जो विधि आगे वर्णन की जायगी उसका अभ्यास करने से मानसिक विकार तथा व्यसन आदि की निबृत्ति होती हुई देखी गई है कई मनुष्यों के दुर्व्यसन की निवृत्ती तथा उद्दंडता क्रोधादि का भी बहुत कुछ परिवर्त्तन होता देखा गया है।

आज कल अमेरिका आदि देशों में इसका महान प्रचार होरहा है यह बात तो कोई नवीन नहीं है इसके वेदादि में भी बहुत प्रमाण मिलते हैं यह विद्या प्राचीन ऋषि मुनियों करके प्रतिपादित है इसमें मुख्य बातें दो हैं एक बिचार, दूसरी भावना। इस बिषयको हम संकल्प सिद्धि नामक ग्रंथ में सविस्तार वर्णन कर आए हैं।

उसके मनन करने से इस विषय में सहायता होगी वह ग्रंथ❀ कल्पवृक्ष कार्य्यालय से ॥=) में मिल सकता है वैदिक प्रमाण देने से ग्रंथ बहुत बढ़ जायगा इस भय से विद्वानों का अनुभव ही प्रदर्शित किया गया है ॥

● दो प्रकार के संकेत ●

संकेत दो प्रकार के होते हैं एक स्वयं संकेत दूसरा पर संकेत।

स्वयं संकेत से अपने मानसिक विकारों का दमन तथा शारीरिक रोग निवृत्ति भी बहुत अंश में होती देखी गई है।

परन्तु जो अंग बिलकुल बेकाम है अथवा हैही नहीं उसकी पूर्ती संकेत से नहीं हो सकती जैसे जो जन्माध है उसको संकेत से दृष्टि नहीं प्राप्त हो सकती। किन्तु जिसके नेत्र विकारी हैं उसको संकेत से बहुत कुछ लाभ होता देखा गया

है ऐसे अन्य अंगो में भी जानना। यह मानस शास्त्र की संकेत विधि केवल मन की कल्पना या कपोल कल्पना ही नहीं है किन्तु पूर्व महर्षियों ने इसके गुण पातंजलादि दर्शनों में सविस्तार वर्णन किये हैं तैसे ही आधुनिक अमेरिका आदि निवासी जन महान २ दिग्गज विद्वानों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया है और सहस्त्रों दीनदुखियों को इससे लाभ पहुँच रहा है और मेरा भी स्वयं सैकड़ोंबार काअनुभवहैऔरकई मानसिक विकारों पर दूसरों को भी लाभ पहुँचा है इससे मेरा पूर्ण विश्वास है कि जो सज्जन बताई हुई विधी के अनुसार मानस शास्त्र के संकेत का अवलम्बन करेंगे उनके मानसिक विकार व्यसन और शारीरिक रोग ईश्वर कृपा से अवश्य निवृत्तहोंगे।

स्वयं संकेत और पर संकेत देने के नियम

स्वयं संकेत अपने आप दिया जाताहै परन्तु इसमें संकेत के शब्द कोमल और थोड़े अक्षर के होने चाहिये।

जिसमें संकेत देने में बहुत देर न लगे और संकेत में रोग का नाम भी न आना चाहिये इससे रोग के संस्कार मन में प्रविष्ट हो जाते हैं। संकेत देने का उत्तम समय रात को सोते समय और सवेरे नींद खुलते ही है। इन दोनों समयों में संकेत को एकाग्र चित्त से कम से कम २० बार पाठ करना चाहिये अधिक से अधिक ५० बार तक जैसा काम हो वैसी ही न्यूना-धिकता की जा सकती है।

संकेत में रोग का नाम न आना चाहिये, जैसे आंख में पीड़ा है तो उसके संकेत में अब हमारी नेत्र पीड़ा दूर होरही है ये न कहके अब हमारे नेत्र बहुत अच्छे हैं और साफ़ दिखाई देता है। इतना ही कहना चाहिये परन्तु भूल से भविष्य वाणी न निकले नहीं तो रोग निवृत्ति में विलम्ब होगा इससे अब हमारे नेत्र बहुत अच्छे हैं साफ़ दिखाई पड़ता है ऐसा कहना

चाहिये। भविष्य वाणी से तात्पर्य यह है कि अब हमारे नेत्र अच्छे हो जांयगे ऐसा कहने से सफलता में विलम्ब होगी क्योंकि मन में जैसे संस्कार डाले जांयगे वैसा ही फल होगा।

❀ व्यसन निवृत्ति का संकेत ❀

(जुआ खेलने के व्यसन पर)

अब जुआ खेलने से हमको अति ग्लानि होगई है इससे उस खेल की तरफ़ देखने को भी मन नहीं होता।

❀ क्रोध निवृत्ति पर संकेत ❀

अब हमारा क्रोध निःशेष निवृत्त होगया है इससे चित्त सदा शान्त और प्रसन्न रहता है। इसी प्रकार अन्य संकेत भी थोड़े अक्षरों में बना के देना चाहिये। इसका फल एक मास से ६ मास तक अवश्य होता है।

परन्तु जो शब्द कहता उसे अपने मन में

अपने को उस समय वैसा ही मान के कहना

चाहिये जैसे क्रोध निवृत्ति का संकेत देना है तो यह संकेत देना होगा कि अब हमारा क्रोध निःशेष निवृत्त हो गया है इससे चित्त सदा शान्त और प्रसन्न रहता है। यह संकेत देते समय अपने क्रोधी स्वभाव को बिल्कुल भूल जाना चाहिये और अपने को क्रोध रहति परम शान्त भावना करे कि हम परम शान्त हैं इस भावना युक्त संकेत देने से शीघ्र प्रभाव पड़ेगा उस समय यह विचार न करे कि केवल भावना से और शब्द उच्चारण मात्र से क्या होगा शास्त्र का वाक्य है कि विश्वासः फलदायकः जैसा जिसको विश्वास होगा वह वैसा ही हो जायगा इसमें किंचित संदेह नहीं करना।

❀ भावना और विश्वास पर दृष्टांत ❀

गांव में स्त्रियाँ ईंट कंकड़ मूर्त्तियों के टुकड़े एकत्र करके दृढ़ विश्वास पूर्वक भावना करती हैं कि ये देवी माई हैं ये हमारी कामना पूर्ण

करेंगी तो उनकी भावना और विश्वास द्वारा उनकी कामना पूर्ण हो जाती है। बालक के रोग निवृत्ति के लिये प्रार्थना करती हैं कि हे देवी माई हमारे बालक की आंखें अच्छी हो जायँ, बुखार छूट जाय तो भावनानुसार वैसाही होजाता है तो मानस शास्त्र की रीतिके अनुसार भावना करने में क्या लाभ न होगा? किन्तु अवश्य होगा इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

संकेत का फल क्यों होता है ऐसी कोई शंका करे तो उसका उत्तर ये है कि निद्रा में मन आत्मा में लीन होता है उस समय सांसारिक सब विचार आत्मा में लीन होने के कारण निद्रा आने के पूर्व मन संस्कार हीन होने से जो संकेत के संस्कार डाले जाते हैं उनका प्रभाव निद्रा में मन परिपूर्ण होता है इससे जागने पर वैसाही फल देखने में आता है। जैसे एक मनुष्य भय से पीड़ित होके निद्रा में लीन होता है तो भय

के संस्कारों के कारण स्वप्न में भी भय के स्वप्न ही देखता है और जागने पर भी भय युक्त ही जागता है।

दूसरा मनुष्य कोई अच्छा तमाशा देख के प्रसन्नता पूर्वक सोता है तो निद्रा में तमाशा ही देखता और प्रसन्न होता है तथा जगाने पर भी प्रसन्न चित्त ही उठता है। तीसरा सोते समय कोई शोक समाचार सुन के सोता है तो स्वप्न में भी शोक सम्बन्धी दृश्य देखता है और जागता है तब शोक युक्त ही जागता है। इन तीनों दृष्टांतों से सिद्ध होता है कि निद्रा से पूर्व मन पर जो संस्कार अंकित किये जायँगे वही मन में अपना पूरा प्रभाव जमा के नित्य अभ्यास के कारण मन का वैसा ही स्वभाव बना देंगे।

इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य विश्वास पूर्वक संकेत नियमित रीति से देगा तो ईश्वर कृपा से जैसा स्वभाव बनाना चाहेगा वैसा ही बना लेगा इस

में किंचित मात्र संदेह नहीं। शास्त्र में लिखा है कि क्रिया परस्य सिद्धिः स्यान्ना क्रिस्य कदाचन।

क्रिया परायण अर्थात् क्रिया करने वाले को सफलता प्राप्त होती है चुप चाप हाथ पर हाथ धर के बैठने वाले को कुछ भी लाभ नहीं होता

प्रश्न—हे भगवन् परसंकेत की क्या विधि है

उत्तर—पर संकेत दूसरे को दिया जाता है उससे भी वही फल होता है जो संकेत से होता है इसमें इतनी विशेषता है कि जो स्वयं संकेत नहीं दे सकता। जैसे बालक या विक्षिप्त नाम पागल को दिया जाता है अथवा किसी का व्यसन गुप्त रीति से छुड़ाना हो तो उसमें भी फलप्रद होता है।

छोटे बालक व अन्य मनुष्य को संकेत देने की रीति

जब बालक या कोई मनुष्य जिसका व्यसनादि छुड़ाना है, वह जब प्रगाढ़ निद्रा में हो तब उसके सिरहाने बैठ के शांती से धीरे २

उसको कोमल शब्दों में सुनावे परन्तु वह जागने न पावे इतने धीरे से सुनावे केवल सुनाने से ही उसके मन पर प्रभाव पड़ेगा ज़ोर से चिल्लाकर कहने की कोई आवश्यकता नहीं।

❀ छोटे भयभीत बालक को संकेत देने की रीति ❀

जब प्रगाढ़ निद्रा में हो तब उसके कान के पास बहुत धीरे २ शब्दों में उसे संकेत दे जिसमें वह जागने न पावे। भैया तुम्हारा भय छूट गया है तुम अकेले निर्भय चले जाते हो कभी भयभीत नहीं होते। ऐसे १५ वा २० बार संकेत देना चाहिये।

जो बालक पढ़ता न हो खेल में अधिक चित्त हो वा मन्द बुद्धि हो उसको संकेत देने की रीति।

अब तुम्हारा मन पढ़ने में बहुत लगता है खेल कूद बिलकुल अच्छा नहीं लगता इससे सदा पढ़ने में ही मन लगाते हो और पढ़ा हुआ शीघ्र याद हो जाता है।

❀ दूसरी रीति ❀

अब तुम्हारी बुद्धी बहुत तीव्र होगई है इसमे पढ़ने में बड़ी रुचि होगई है जो पढ़ते हो बड़ी शीघ्रता मे समझ में आजाता है ऐसे ही अन्य कार्य में व्यसनादि छुड़ाने में बुद्धि मे संकेत बना लेना चाहिये केवल संकेत में कड़े शब्द और भावी फल देने वाले शब्द न हों।

प्रश्न—हे भगवन् यदि कोई बालक व मनुष्य जिसके पास हम पहुँच नहीं सकते अथवा गुप्त रीति से उसका सुधार करना है तो उसका भी कोई उपाय है यदि होतो कृपा करके वर्णन करिये।

उत्तर—जिसके पास किसी कारण तुम न पहुँच सको अथवा गुप्त रीति से उसका अवगुण छुड़ाना हो तो मानस शास्त्र के विद्वानों ने उसकी भी युक्ति ढूंढ़ निकाली है।

(गुप्त रीति से अवगुण छुड़ाने की रीति)

जिसका गुप्त रीति से अवगुण वा व्यसन छुड़ाना है उसको ध्यान से अपने पास लेटा देखे

मानों हमारे पास पड़ा है और गाढ़ निद्रा में सो रहा है ऐसा ध्यान करके जो संकेत देना हो वह कोमल शब्दों में कम से कम २० बार सुनावे। ऐसा नित्य रात को सोते समय संकेत देने से ईश्वर कृपा से १ मास में अवश्य परिवर्त्तन प्रतीत होगा। संकेत की रीति पूर्व दृष्टांत रूप से वर्णन कर आये हैं वैसेही कार्य्यानुसार बना लेना चाहिये। इस मानस शास्त्र विधी से केवल दूसरे का हित और परोपकार करने से अपना तेज और शान्ति की वृद्धी होती है इससे स्वार्थ वश किसी पर यदि कोई विपरीत संकेत करेगा तो उसको मानसिक और व्यावहारिक महान हानि उठानी पड़ेगी और संकेतों से लाभ के बदले हानि की बड़ी भारी संभावना है इसमें संदेह नहीं करना ये भी अनुभूत है। इससे हे सज्जनो इस मानस शास्त्र का प्रयोग केवल परोपकार ही में करना उचित है स्वार्थ वश किसी को

हानि पहुँचाने मे अपने को महान् हानि उठानी पड़ती है ये मानसिक प्रयोग है क्योंकि जितना स्थूल कार्य्य होता है उस का उतना ही स्थूल फल होता है और जितना सूक्ष्म कार्य्य होता है। उतना ही उसका बल अधिक होता है और उसका फल भी बड़ा तीव्र होता है इससे इस बात की सावधानी ध्यान में रखना चाहिये। इस विषय को भी मैंने संकल्प सिद्धी नामक ग्रंथ में सविस्तार सयुक्तिक वर्णन किया है जिसे इच्छा हो वहां देख सकता है।

इन संकेतों के बनाने में किसी प्रकार अड़चन पड़े तो उत्तर के लिये -) का टिकट भेजने से परोपकारार्थ सहर्ष उसका उत्तर दिया जासकता है।

॥ त्रयोदशोऽध्यायः समाप्तः ॥



क्षमा प्रार्थना



अब सब महा पुरषों से और विद्वज्जनों से सनम्र प्रार्थना है जो कुछ मूर्खता वश व दृष्टि-दोष बुद्धि-दोष से जहाँ कहीं अनुचित लिख गया हो वा अशूद्धी रह गई हो उसे कृपा दृष्टी से क्षमा कर के सुधार लेवें क्योंकि कहा भी है कि—

क्षमा साराहि साधवः

साधु जन क्षमा स्वभाव वाले होते हैं।



॥ श्रीकृष्ण आरती ॥



जय माधव मधुसूदन जय करुणा सिंधो ।
जय भव भीति विनाशन शरणागत बंधो ॥
जयदेव जयदेव जय माधव० ॥ १ ॥

चन्दे कमले ज्ञानं विनता सुत यानं ।
हरि विनता सुत यानम् ।
जगदे कांत निदानं कृत सुर गण मानम् ॥
जयदेव जयदेव जय माधव० ॥ २ ॥

सागरजा परिवारं कौस्तुभ मणि हारम् ।
हरि कौस्तुभ मणि हारम् ।
क्षीरां भोधि विहारं निगमागम सारम् ॥
जयदेव जयदेव जय माधव० ॥ ३ ॥

ब्रह्मानन्द विकाशं पूरित सकलाशम् ।
हरि पूरित सकलाशम् ।
दानव पूग विनाशं खंडित भव पाशम् ॥
जयदेव जयदेव जय माधव० ॥ ४ ॥

इति श्रीमत्परमहंस योगिवर्य्य स्वामी ब्रह्मानन्द विरचितं श्रीकृष्णार्तिः समाप्तः ।

